वर्ष ३ अंक ३० - ३२
विक्रम सम्वत् २०७८ ज्येष्ठ
अप्रैल-मई-जून २०२१
संयुक्त अंक

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

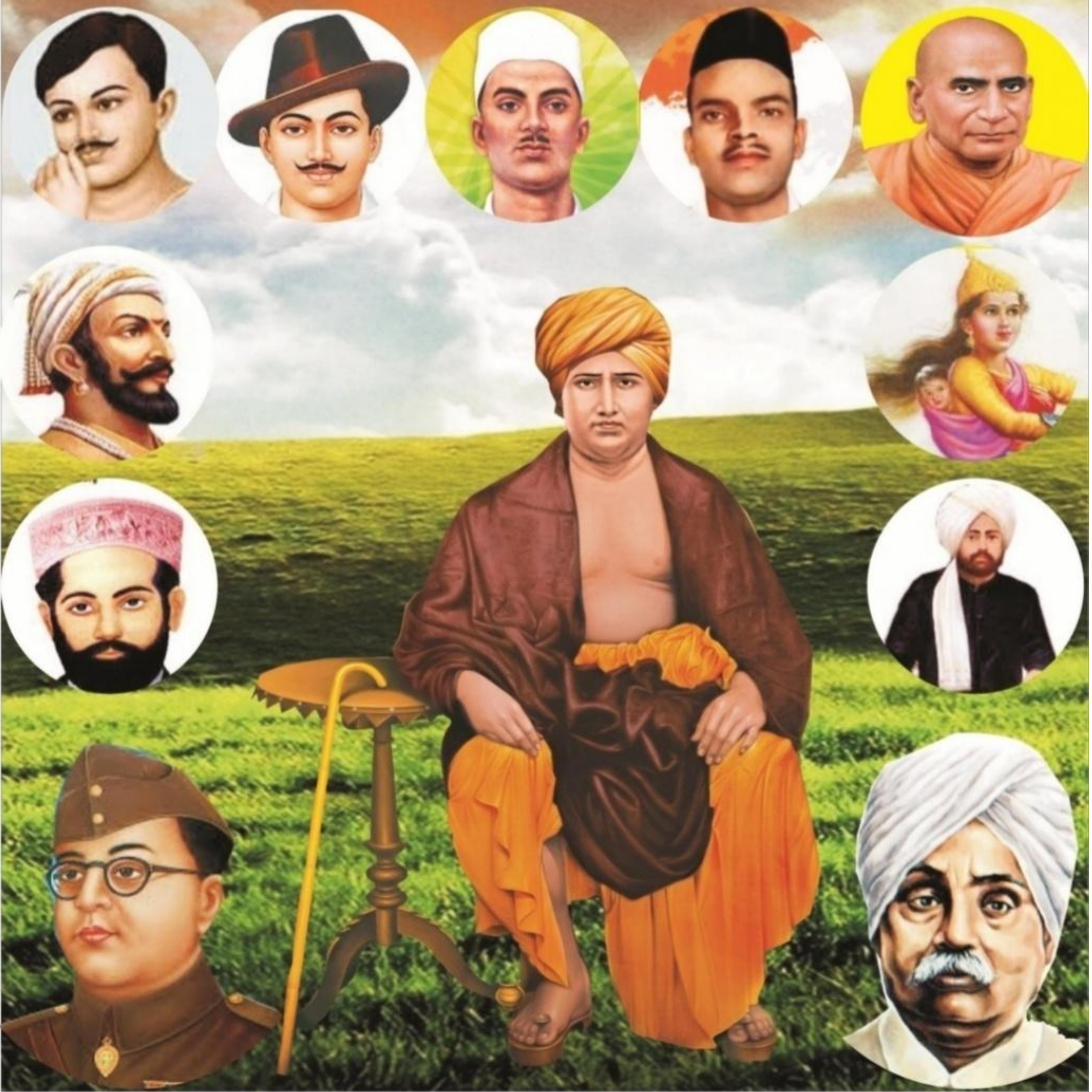

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

अप्रैल–मई–जून २०२१

वर्ष–३ अंक–३०,
विक्रम संवत् २०७८
दयानन्दाब्द– १९७
कलि संवत् – ५१२३
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२२

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७९९३०,
९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)–३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. मौत की सदी में दोहरी मौत (सम्पादकीय)
२. हिरण्यगर्भ बनाम 'बिग बैंक' तर्क...
३. शस्य श्यामला माटी (कविता)
४. Third Ashrama : Vanaprastha
५. महान् तेजों से भासित
६. मानव मूल्यों के आदि स्रोत हैं वेद
७. जड़ –चेतन का यह संश्लेषण (कविता)
८. धर्म की आड़
९. इंसानियत के दुश्मन (कविता)
१०. स्वामी दयानन्द सरस्वती की वेदभाष्यपद्धति
११. तू ही सरलतम (कविता)
१२. हमारी मानसिकता पराधीन होती जा रही है
१३. क्या आर्यसमाज कोरोना काल का...
१४. झांसी की अधीश्वरी वीरांगना लक्ष्मीबाई
१५. शब्दों की गरिमा
१६. विकास और पर्यावरण : एक दूसरे के पूरक या विपरीत
१७. एलोपैथी बनाम स्वामी रामदेव
१८. पुंसवन संस्कार की महत्ता समझें
१९. दुख के फिर साये गहराए (कविता)
२०. वीर सावरकर : एक नहीं, दो आजन्म कैद की सजा
२१. कृतज्ञता की दिव्यता
२२. वसुधैव कुटुम्बकम (कविता)
२३. कोरोना के खतरे को रोकने में क्या शाकाहार है...

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

मौत की सदी में दोहरी मौत

जन्म और मौत का सिलसिला संसार में चलता ही रहता है। कभी जन्म दर बढ़ जाती है तो कभी मृत्यु दर बढ़ जाती है। यह कार्य कभी प्राकृतिक आपदा के फल स्वरूप होता है और कभी मानव द्वारा अपने कर्मों से सृजित कर लिया जाता है। ईसा की इक्कीसवीं सदी मौत की सदी बनकर आई है। एक महामारी का रूप लेकर मौत ने लाखों लोगों को निगल लिया है और सारे संसार में त्राहि–त्राहि हो रहा है।

सत्ताधीशों की धूर्तता, नीचता और मूर्खता का परिणाम सारी कौम भोगने पर विवश है। यह सब आम देशवासियों की राजनीतिक नासमझी के कारण हुआ है। कातिलों को मसीहा और रहजनों को रहनुमा समझ कर सत्ता सौंप बैठे। ये लोग तो पूंजीपतियों के क्रीतदास हैं, जो तुम्हारे मुख का निवाला छीन कर और उत्पादन के साधनों को छीन कर पूंजीपतियों को सौंपने का काम मोटे कमीशन पर करने वाले हैं।

रो रहे हैं यार इन लाशों पे तो बेअख्तियार।
यह नहीं दरयाफ्त करते किसने इनकी जान ली।।

खोजोगे तो पता चलेगा कि यह इन्हीं सरमाएदारों के दलाल राजनीतिबाजों का काम है जो कि देश की सत्ता पर काबिज हैं।

हमारी संस्कृति तो कहती है –

मरणं नाभिनिन्देत् नाभिनिन्देत् जीवनम्।।

अर्थात् न मौत की तारीफ करो न जिन्दगी की। दोनों को धन्य करने का प्रयत्न करो।।

संस्कृत में एक नाटक है मृच्छकटिक, इसमें चारुदत्त नाम का पात्र है जिसे झूठे अपराध में मृत्युदण्ड देने की घोषणा होती है। वधस्थल की ओर ले जाने पर वह रोने लगता है। लोग पूछते हैं कि रो क्यों रहे हो? मरने से डरते हो क्या ? उसने कहा –

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितम् यशः।
विशुद्धस्य तु मे मृत्युः पुत्रजन्म समःकिल।।

अर्थात् मैं मृत्यु से नहीं डरता, केवल यश दूषित हो रहा है। विशूद्ध मृत्यु तो मेरे लिए पुत्र जन्म की तरह प्रसन्नता प्रदायक है।

आइए देखें वेद क्या कहता है –

मृत्योपदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधाना।
आप्यायमाना प्रजया धनेन शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियासः।।

इसका अर्थ है कि ऐ समाज और संगठनप्रिय लोगो! मृत्यु के पैर को पीछे ढकेलते हुए तार देने वाली लम्बी–लम्बी आयु प्राप्त करो। प्रजा और धन से तृप्त हो कर शुद्ध और पवित्र हो जाओ।

यहाँ शुद्ध से तात्पर्य आर्थिक शुचिता से और पवित्र का तात्पर्य मोहमय पक्षपात से है।

इस लिए सुधी आर्यजन अपनी मृत्यु को विशुद्ध और सामान्य से विशिष्ट बनाने का विशेष प्रयत्न करते थे। इसलिए वह आदर्श और अनुकरणीय होती थी और व्यक्ति को मृत्यु के बावजूद भी अमर बना देती थी। उसी के लिए कहा जाता था *"कीर्तिर्यस्य स जीवति"*।

औरों के लिए मरने वाले, मर कर भी हमेशा जीते हैं।
जिस मौत पे दुनिया रश्क करे उस मौत की कीमत क्या होगी?

जिस प्रकार की मौत सभी मरना चाहें वह बहुत कीमती होती है। स्वामी श्रद्धानन्द जी की मृत्यु पर गान्धीजी ने कहा था कि–"मैं भी ऐसी ही मृत्यु चाहता हूँ।" अभिमन्यु के मरने पर विलाप करती हुई सुभद्रा को सान्त्वना देते हुए श्रीकृष्ण ने भी यही कहा था कि– "पगली रोती क्यों है, तेरे लाल ने वह मृत्यु प्राप्त की है जिसके लिए हम सभी क्षत्रिय लोग तरसते हैं।"

परन्तु इस सदी में दोहरी मौत की भरमार है। पूरी भारत सरकार, लोकसभा के स्पीकर, अनेक राज्यपाल, मुख्यमन्त्री और न्यायाधीश दोहरी मौत मर चुके हैं। स्वयं को भगवान् या भगवान् का अवतार कहने वाले साधू–सन्त साध्वियाँ, मन्त्री विधायक और सांसद मरे पड़े हैं, जिन्दा लाश बन चुके हैं। सचमुच मरने की औपचारिकता मात्र शेष रह गई है। मैथिलीशरण के शब्दों में हम यही कह सकते हैं कि –

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी।
मरो परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी।
हुई न जो सुमृत्यु तो वृथा मरे वृथा जिए।
मरा नहीं वही कि जो जिया न आप के लिए।
यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

हिरण्यगर्भ बनाम 'बिग बैंक' तर्क और तथ्य की कसौटी पर

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

आर्ष क्रान्ति विश्व की मात्र एक पत्रिका है जो अत्यन्त जटिल, आवश्यक और वेद–विज्ञान परक विषयों पर गवेषणात्मक और तर्क संगत लेखों को निरन्तर प्रकाशित करती है। पिछले अंक में लिपि और भाषा विज्ञान विकास–क्रम पर समीक्षात्मक पड़ताल करने का प्रयास किया था। पिछले अनेक अंकों में मैंने आधुनिक विकासवाद, आधुनिक विकासवाद की धारणाएं और मान्यताओं की समीक्षा की। विश्व स्तर पर विकासवाद के नाम पर अनेक ऐसी मान्यताएं, तर्क, धारणाएं और विचार प्रचलित हैं जो भ्रम ही नहीं पैदा करते अपितु भ्रमित भी करते हैं। विज्ञान और इतिहास की पुस्तकों में विकासवाद को लेकर कोई सर्वसम्मति से स्वीकार मत नहीं पढ़ाया जाता। दूसरी बात, विकासवाद का जो सिद्धान्त–नियम पढ़ाया जाता है, वह अनेक प्रश्नों को जन्म देने वाला है। सामान्य कक्षा के छात्र–छात्राएं या व्यक्ति विज्ञान या इतिहास की पुस्तकों को पढ़कर सृष्टि–विकास के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ सकता है। एक बात जो सबसे अधिक समझने की है वह है लिपि और भाषा विकास का सृष्टि–विकास से क्या कोई सम्बन्ध है। किस तरह से सृष्टि के प्रारम्भ में वैदिक लिपि और भाषा की उत्पत्ति हुई, इस विषय पर आज के लिपि और भाषा वैज्ञानिक अधिक गम्भीरता से विचार नहीं करते हैं, जबकि यह सृष्टि विकास में अत्यन्त आवश्यक विषय है। इस विषय पर विचार करने के पूर्व अद्यतन चर्चित विषय 'बिग बैंक सिद्धान्त' पर चर्चा कर लेना आवश्यक है।

– सम्पादक

सृष्टि उत्पत्ति और 'बिग बैंक सिद्धान्त'

आधुनिक विज्ञान में सृष्टि उत्पत्ति का नया सिद्धान्त 'बिग बैंक थ्यूरी' कहा जाता है। लेकिन यह 'बिग बैंक थ्यूरी' वेद के महानाद का निनाद नहीं है। वैदिक वाङ्गमय के अनुसार सृष्टि अनादि है। वर्तमान पृथ्वी की उत्पत्ति चार अरब वर्ष से अधिक हुए हुई। जैसे सृष्टि अनादि है वैसे सृष्टि में 'महानाद' भी अनादि है। वर्तमान सृष्टि की उत्पत्ति का नया वैज्ञानिक सिद्धान्त व विकास का नाम है 'बिग बैंक' सिद्धान्त। इसके माध्यम से आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने सृष्टि (जड़ प्रकृति) उत्पत्ति और उसके विकास को समझाने का प्रयास किया है, लेकिन अभी इस पर सर्वसम्मति नहीं बन पाई है। आज भी इस विषय पर वैज्ञानिक गहन चिन्तन और शोध के साथ आगे बढ़ रहे हैं। इस लिए यह नहीं कहा जा सकता कि 'बिग बैंक सिद्धान्त' सृष्टि उत्पत्ति का अब तक का सबसे प्रमाणिक व मान्य सिद्धान्त है। अभी जब तक विश्व के सभी वैज्ञानिक और तर्कशास्त्री इस सिद्धान्त से सहमत न हों जाएं तब तक इसे सृष्टि उत्पत्ति के सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त में सर्वप्रथम 'हिरण्यगर्भ' के प्रकट होने की चर्चा है। यजुर्वेद के निम्न मन्त्र में महर्षि दयानन्द ने ईश्वर–स्तुति–प्रार्थना मन्त्र के अन्तर्गत दिए हैं। उसमें सृष्टि का रहस्य छिपा हुआ है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(13.4)

महर्षि दयानन्द ने इसका अर्थ किया है जो स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य, चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतनस्वरूप था, जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था, वह इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

हिरण्यगर्भ का सम्बन्ध चेतना से है और बिग बैंक थ्यूरी पदार्थ से सम्बन्धित है। स्पष्ट है चेतना को आधार मानकर जब सृष्टि की उत्पत्ति की विवेचना या गवेषणा होती है तो गवेषक किसी ऐसे आधार के माध्यम से आगे बढ़ता है जिससे सृष्टि की उत्पत्ति ही नहीं बल्कि

सृष्टि उत्पत्ति के उद्देश्य, नियम और लक्ष्य का भी ज्ञान होता है। वहीं पर जब सृष्टि उत्पत्ति का आधार मात्र पदार्थ का विस्फोट माना जाता है तब सृष्टि के नियम, उसके उद्देश्य, लक्ष्य और कार्य के सम्बन्ध में कोई मानक तय नहीं होता और न तो हो ही सकता है। क्योंकि पदार्थ या ऊर्जा का कोई लक्ष्य, उद्देश्य या नियम स्वतः नहीं होता। किसी के सञ्चालन में महाऊर्जा का विस्फोट, उसके लक्ष्य, कार्य और नियम–सिद्धान्त के साथ आगे बढ़ा जा सकता है। स्पष्ट है सृष्टि की उत्पत्ति पदार्थ को आधार मानकर सृष्टि उत्पत्ति के उन रहस्यों को उदघाटित नहीं किया जा सकता जो आज भी रहस्य बने हुए हैं। जैसे चेतना का कभी निःशेष क्यों नहीं होता ? पदार्थ या ऊर्जा में महाविस्फोट यदि हुआ भी तो उससे प्राणी जगत् की सृष्टि कैसे हुई ? क्योंकि ऊर्जा कोई चेतन वस्तु या सत्ता नहीं है। चेतन से चेतन तो पैदा हो सकता है, लेकिन जड़ से न जड़ की उत्पत्ति होती है, चेतन के उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।

पदार्थ को अनादि मानकर सृष्टि उत्पत्ति की कल्पना तो की जा सकती है लेकिन वास्तविकता से सृष्टि एक कल्पना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होगी। आधुनिक सृष्टि विज्ञान से जुड़े वैज्ञानिकों का मानना है कि महाविस्फोट (बिग बैंक) के कारण पृथ्वी, समुद्र, पठार, पर्वत आदि बनें। धीरे–धीरे वायुमण्डल ठण्डा हुआ और समुद्र में एक कोशकीय जीव की उत्पत्ति हुई। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि समुद्र में प्रथम एक कोशकीय जीव की उत्पत्ति कहाँ से हुई और किस विधि से हुई ? इस प्रश्न पर आधुनिक जीव या सृष्टि वैज्ञानिक यह नहीं बताते कि महाविस्फोट के पीछे जो कारण थे और सृष्टि उत्पत्ति के बाद कौन ऐसे कारण से जिसके कारण सृष्टि आगे बढ़ती गई और निर्जीव से जीव की उत्पत्ति सम्भव हो सका। यदि उस समय निर्जीव से जीव की उत्पत्ति सम्भव है तो आज क्यों नहीं है ? दूसरी बात, पदार्थ जड़ है। सृष्टि में मात्र पठार, समुद्र, पर्वत नहीं हैं। असंख्य प्राणी जगत् है। 'बिग बैंक' के सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में एक महाविस्फोट हुआ जिससे अनन्त ऊर्जा निकली जिससे भिन्न–भिन्न तरह की क्रियाएं हुई। लेकिन इस सिद्धान्त से कई प्रश्न उठ खड़े हुए। महाविस्फोट के पीछे कोई ऐसी चेतन सत्ता तो होनी चाहिए जो विस्फोट का आधार हो। दूसरा प्रश्न है कि सृष्टि के प्रारम्भ में महाविस्फोट हुआ क्यों ? क्या महाविस्फांट मात्र से जीव की उत्पत्ति सम्भव है ? और यह महाविस्फोट क्यों और किसके द्वारा हुआ ? क्योंकि किसी कार्य के पीछे उसका कारण और कर्त्ता का होना आवश्यक है। हम जानते हैं कि विज्ञान में ही पढ़ाया जाता है कि जड़ पदार्थों से जीवों की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं है। फिर प्रश्न यह है कि पदार्थ भी जड़ है इससे सजीव सृष्टि की उत्पत्ति कैसे सम्भव हुई ? सामान्य नियम है कि किसी भी निर्माण के लिए किसी निर्माण–कर्त्ता का होना आवश्यक है। जैसे घर बनाने के लिए घर बनाने वाला, घर बनाने में उपयोग में आने वाली सामग्री, घर बनाने का लक्ष्य और उद्देश्य, घर बनाने के नियम–सिद्धान्त का होना आवश्यक है, क्या अनन्त सृष्टि को बनाने के लिए सृष्टिकर्त्ता, सामग्री, नियम–सिद्धान्त, लक्ष्य का होना आवश्यक नहीं है? चेतन सृष्टि को बनाने में अचेतन पदार्थ का आधार रूप में होना, यह न तो तर्क संगत लगता है और न ही तथ्ययुक्त ही। एक गिलास किसी भी तरह अपने समान दूसरी गिलास नहीं पैदा कर सकती, जब कि एक मधुमक्खी दूसरी मधुमक्खी पैदा करती है।

कल्पना के आधार पर अरबों वर्ष पूर्व समुद्र, धरती, पर्वत के निर्माण को तो उल्लेख कर सकते हैं लेकिन चेतन प्राणी की उत्पत्ति कल्पना के बाहर की घटना है। क्योंकि चेतन प्राणी के लिए उसको स्वरूप देने वाला भी चेतन होना चाहिए। मात्र ऊर्जा के उद्भव से सृष्टि का निर्माण होना कल्पना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। हम सभी जानते हैं, विज्ञान कल्पना का विषय नहीं हैं। विज्ञान में तर्क, तथ्य और नियम का होना (शुद्ध जानकारी) आवश्यक है। इस लिए सृष्टि निर्माण में पदार्थ को आधार मानना और उसके पीछे किसी ठोस कारण को न मानना विज्ञान के सिद्धान्त के ही विपरीत है।

सृष्टि उत्पत्ति को लेकर वेद और आधुनिक विज्ञान में भिन्न–भिन्न विचार हैं। जीव विज्ञान में विकासवाद और आधुनिक विकासवाद दो विचार धाराएँ प्रचलित हैं। सृष्टि विज्ञान एक भिन्न विषय है। इसके अतिरिक्त ध्वनि विज्ञान, लिपि विज्ञान और भाषा विज्ञान भी सृष्टि विज्ञान से जुड़े विषय हैं। प्रश्न यह है कि क्या सृष्टि के साथ लिपि व भाषा की उत्पत्ति भी हुई? भाषा का अर्थ बोलना, लिखना और पढ़ना है। मनुष्य जब पैदा हुआ

उसी के साथ क्या लिपि और भाषा की उत्पत्ति हुई? या धीरे–धीरे मानव ने बोलना, लिखना और पढ़ना सीखा। सामान्य चिन्तन से हम कह सकते हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति के साथ लिपि और भाषा की उत्पत्ति नहीं हुई। यह आधुनिक विज्ञान मानता है और चिन्तन से भी समझ में आता है। लेकिन नाद की उत्पत्ति सृष्टि उत्पत्ति के साथ हुई। सृष्टि उत्पत्ति अत्यन्त जटिल और रहस्यमय विषय है। आधुनिक विज्ञान सृष्टि उत्पत्ति के साथ विकासवाद को भी मानता है। यह विकासवाद सृष्टि के निरन्तर विकास की प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है। लेकिन आधुनिक जीव विज्ञान और सृष्टि विज्ञान में जैसा वर्णन मिलता है वह कई प्रश्न खड़ा करता है। इन प्रश्नों में प्रथम प्रश्न यह है कि सृष्टि उत्पत्ति अर्थात् सृष्टि को बनाने वाला कौन है? मात्र विस्फोट हो जाने और प्राणी रचना के लिए आवश्यक पांच तत्त्वों और उन्हें एक ढांचे में बना लेने मात्र से कुछ भी नहीं होने वाला। क्योंकि पांचों तत्त्व तो चेतना विहीन हैं। इसलिए जब तक चेतना और जीवात्मा की स्वीकारता नहीं होगी तब तक बात बनने वाली नहीं है। नाद, ध्वनि, लिपि, बुद्धि, महाचेतना, महामन, आत्मा और परमात्मा इसी का सृष्टि निर्माण में भूमिका है। आधुनिक विज्ञान अब धीरे–धीरे चेतना की सत्ता को स्वीकारने लगा है, लेकिन वैसा नहीं जैसे वेद शास्त्रों में है।

आधुनिक विज्ञान सृष्टिकर्त्ता को नहीं मानता है, वह अकस्मात विस्फोट और विस्फोट के बाद प्रकृति के विभिन्न अवयवों के माध्यम स्वयं सृष्टि का निर्माण होने की बात करता है। लेकिन वेद में प्रकृति के विभिन्न अवयवों के विस्फोट और हिरण्यगर्भ के प्रकट होने के पीछे का कारण सर्वशक्तिमान् परमात्मा को माना गया है। अर्थात् परमात्मा ने प्रकृति के अवयवों को लेकर चेतन सृष्टि की।

सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त के साथ लिपि व भाषा की उत्पत्ति पर गहन विवेचना आगे के अंकों में की जाएगी।

शस्य श्यामला माटी

अपनी संस्कृति को पहचानो
इसका मान करो।
शस्य श्यामला माटी पर
मित्रो अभिमान करो।।

गौरव से इतिहास भरा है भूल न जाना।
सबसे ही बेहतर है होता सरल बनाना।
करो समीक्षा जीवन की अनमोल रतन है,
जीवन का तो लक्ष्य नहीं भौतिक सुख पाना।

ग्राम–ग्राम का जनजीवन, हर्षित खलिहान करो।
शस्य श्यामला माटी पर मित्रो अभिमान करो।।

उठो आर्य सब आँखें खोलो वक्त कह रहा।
झूठ मूठ का किला तुम्हारा स्वयं ढह रहा।
अनगिन आतताइयों ने ही जड़ें उखाड़ीं,
भेदभाव और ऊँच–नीच को राष्ट्र सह रहा।

उदयाचल की सविता देखो, उज्ज्वल गान करो।
शस्य श्यामला माटी पर मित्रो अभिमान करो।।

तकनीकी विज्ञान ,ज्ञान का मान बढ़ाओ।
सादा जीवन उच्च विचारों को अपनाओ।
दिनचर्या को बदलो तन–मन शुद्ध रहेगा,
पंचतत्व की करो हिफाजत उन्हें बचाओ।

भारत, भारत रहे इसे मत हिंदुस्तान करो।
शस्य श्यामला माटी पर मित्रो अभिमान करो।।

भोग–विलासों में मत अपना जीवन खोना।
आपाधापी वाले मत यूँ काँटे बोना।
करना प्यार प्रकृति से भी हँसना– मुस्काना,
याद सदा ईश्वर की रखना सुख से सोना।

समझो खुद को तुम महान् श्वाशों में प्राण भरो।
शस्य श्यामला माटी पर मित्रो अभिमान करो।।

–✍ डॉ. राकेश चक्र
(मुरादाबाद उ.प्र)

THIRD ASHRAMA: VANAPRASTHA

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

Under the Vedic Culture the third stage of life is called the Vanaprastha Ashrama. The word 'Vanaprastha' does not appear in the Vedic text. However, the word 'Muni' appears in the Vedic text. 'Vanaprastha' means 'the person who has left the house to live in the forest' and 'Muni' means 'a person of meditation', and the two words are identical in the Vedic text. This way we can say that 'the Vanaprastha Ashrama' is certainly a Vedic term.

The 'Sanskara Vidhi' authored by Rishi Dayananda speaks that the Vanaprastha Sanskar is performed at the time when the son of a person following the rules of Brahmcharya and after marriage has got a child, that is, when a son is born to his son, then that person should retire to the forest and perform the prescribed duties.

The Shatapatha Brahmana says—

ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद्
वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।।

[It is proper for all men to complete the Brahmcharya Ashrama and then to enter the Grihastha Ashrama, and after the Grihastha Ashrama to step into the Vanaprastha Ashrama and after that to accept the Order of Samnyasa.]

Yajurveda (19.30) preaches:-

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।

Rishi Dayanand explains the above verse and concludes its meaning with his views as under —

When a man accepts (व्रत) to observe the vows of Brahmcharya and to adhere to truth and discipline in life, by such vows he attains (दीक्षा) high merits and status. By virtue of such merits he gains (दक्षिणा) expertise. By expertise he gains (श्रद्धा) true faith in and adherence to the truth. By the true faith in and adherence to truth, he gains (सत्य) the true eternal knowledge. Therefore, after having lived faithfully the stages of Brahmcharya and Grihastha, one should indeed step in the Vanaprastha Ashrama.

Atharvaveda (9.5.1) preaches:-

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां
तृतीयम्।।

The word 'तृतीयम् 'meaning 'the third' here is for the Vanaprastha Ashrama, being the third in number among the Four Ashramas. The verse means —

[O house-holder! Having known it perfectly well, divert your mind away from the Grihastha life, and start the Vanaprastha stage, which is appreciated by the pious people. Free yourself, that is, cross over the miseries that are born out of attractions and attachments, and know your soul to be ageless and immortal, and ascend the third stage of Vanaprastha, which is free from worldly displeasures and anxieties.]

Mundak Upanishad (1.2.11) also preaches to enter the Third Stage, as follows —

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्त्या विद्वांसो भैक्ष्यचर्याञ्चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।

[O men! The learned people who live in the forest peacefully among the forest-dwellers, performing Yoga and meditation with devotion to God, and beg and subsist on alms, they are indeed faultless, without sins, and free from attachments. They succeed through the Pranas, to attain the perfect, imperishable God, Who is birthless and deathless. Therefore, it is a best undertaking to accept the Vanaprastha Ashrama.]

Manusmriti (6.1) educates us to live a family life followed by the Vanaprastha Ashrama —

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत् स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद् विजितेन्द्रियः।।

[The dvija or twice-born,i.e., Brahmana, Kshatriya and Vaishya, after having completed their education, observing the discipline of Brahmcharya and having taken their bath during Samavartan, and having their senses and spirit under control, should live the life of a Grihasthi as described, and then they should live in the forest.]

Manusmriti (6.2) guides the house-holders to enter the Vanaprastha Ashrama on witnessing the signs of aging on their face and hair. It says:

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।

[The Grihasthis or house-holders should take shelter in the forest when they see that their skin is becoming loose and their hair has turned grey and when a son (child) is born to their son.]

The wife may accompany the husband to the forest, or else may remain with the sons. Manusmriti (6.3) further says—

सन्त्यज्य ग्राम्याहारं सर्वञ्चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा।।

[When the house-holder men accept the Vanaprastha, then they should consume what is produced in the village and leave back all domestic belongings at home, and leave their wife under the care and responsibility of their son, or let her accompany them to dwell in the forest.]

The Vanaprasthis should keep them busy, studying and meditating on the

Vedas, during their secluded life in the forest. Manusmriti (6.5) says—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः।।

[There in the forest, he should always engage himself in the study and teaching of the Vedas and other scriptures, and have his mind and other senses under control. If his wife is living with him, he must not make marital contact with her. He should treat her like other friends. He may give things to others; but should not accept anything from them. He should always be merciful to all creatures.]

Rishi Dayanand says in his famous 'Sanskar Vidhi' as follows :

'The time to enter the Vanaprastha Ashrama is after the age of 50 years. When your son has already a son born to him, then explain the responsibilities and duties of the Grihastha Ashrama to your wife, brother, son, daughter-in-law and other relatives, and then prepare yourself to leave for the forest. If your wife decides to accompany you, then take her along with you. Otherwise, entrust your eldest son to take care of her. Give her clear instructions to guide her son and others to follow the path of Dharma, and to shun whatever is not according to the dictates of Dharma.'

Thus the Vanaprastha Ashrama is the Third Stage of life under the Vedic System of Life. This stage is for studying the Vedas and meditating on God and the world, so as to clear one's path of realising God and attaining moksha.

हिन्दुशब्दो ग्राह्यः

स्वतन्त्र शब्द है – हिन्दू।

इसे विशेषण बनायेंगे तो मात्रा छोटी हो जाएगी; यथा–हिन्दु–धर्म, हिन्दुस्थान, हिन्दु राष्ट्र, इत्यादि।

संस्कृत में 'हिन्दुः' उचित होगा; 'भानुः' की तरह।

• 'हिन्दुः' शब्द वेदों में नहीं है। ब्राह्मण–ग्रन्थों, उपनिषदों, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, गृह्यसूत्रों एवं पुराणों में नहीं है। संस्कृत के शब्दकोश 'अमरकोषः' में भी नहीं है।

• 'हिमालयं समारभ्य ... हिन्दुस्थानं ..'
यह जो श्लोक दिया है; यह ऋग्वेद में नहीं है; अन्य किसी वेद में नहीं है; 'हिम' शब्द से प्रारम्भ मन्त्र तो वेदों में हैं; 'हिमालय' शब्द से प्रारम्भ कोई भी मन्त्र किसी वेद में नहीं है।

• ऋग्वेद (८.२.४१) मन्त्र निम्नवत् है –

'शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्। अष्टा परः सहस्रा।।'

[(विभिन्दो) हे शत्रुकुल के भेदन करने वाले! आप (अस्मै) मेरे लिए (चत्वारि अयुता) चालीस हजार से (अष्टा सहस्रा परः) आठ हजार अधिक (शिक्षा) शिक्षा (ददत्) देते हैं।]
यहाँ 'इन्दु या हिन्दु' शब्द नहीं; 'भिन्दुः' शब्द है अर्थात् भेदने वाला।

• लेख में जो 'हिन्दू' शब्द की परिभाषाएँ दी हैं; ये शुंग–कालीन पतंजलि तृतीय, गुप्त–कालीन कालिदास या हर्ष–कालीन बाणभट्ट के समय की नहीं; अर्थात् शास्त्रीय नहीं हैं; आधुनिक आचार्यों की हैं।

• 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति पारस–देश वासियों के व्यवहार से हुई है, जो 'स' के स्थान पर 'ह' बोलते थे।

• फारसी भाषा में 'हिन्दू' शब्द के अर्थ हैं – काला, चोर, गुलाम आदि। मुस्लिम आक्रान्ताओं ने इस शब्द का प्रयोग अपनी घृणा दिखाने के लिए किया था।

• इस कारण ऋषि दयानन्द ने इसके बजाए 'आर्य' शब्द के प्रयोग की प्रेरणा दी, जिसका अर्थ है 'श्रेष्ठ'। इससे असंख्य लोगों ने इसे नाम की तरह अपनाया।

• परन्तु गान्धि–काल में हिन्दू–मुस्लिम दंगे हुए, जिससे 'हिन्दू' शब्द का कागजी प्रयोग बढ़ा। भारत का विभाजन वस्तुतः मुस्लिम–अमुस्लिम विभाजन था; किन्तु इसे हिन्दू–मुस्लिम विभाजन कहा गया। इससे 'चोर' आदि अर्थों से भिन्न 'हिन्दू' शब्द को भारत–जाति के रूप में विश्व–भर की मान्यता मिल गयी।

• आर्यसमाज 'हिन्दू' के बजाए 'आर्य' शब्द को पसन्द करता है। आर्यसमाज हिन्दुसमाज से अलग नहीं; अपितु इसके भीतर एक सुधारवादी समूह है। जो व्यक्ति या समूह हिन्दुपक्षी है; वह आर्यसमाज का पक्षधारी नहीं भी हो सकता। परन्तु जो हिन्दुविरोधी है; वह आर्यसमाज का भी विरोधी है।

• जिन लोगों के पूर्वज भारत में ही बसते आये हैं; उन हिन्दुओं (आर्यसमाज सहित); बौद्धों, जैनियों, सिखों आदि भारतवासियों का प्रतिनिधि–शब्द आज 'हिन्दू' हो सकता है।

• शास्त्रीय विवेचन से अधिक आज सामाजिक संगठन की आवश्यकता है। अतः 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग उचित है। इसके लिए शास्त्रीय आधार मत तलाशिए; क्योंकि वह है नहीं। 'चोर' आदि अर्थों को मत नकारिए; अब प्रासंगिक न होने से इन अर्थों पर विचार नहीं होता। आज इस शब्द का अर्थ लगभग भारत–जाति के समान विस्तृत है। अतः वीरोचित ढंग से, सगर्व और आत्म–विश्वास से आधुनिक परिभाषाएँ बनाइए। हिन्दू–मुस्लिम विभाजन और 'शेष सब हिन्दू' का न्याय नवीन परिभाषा बनाने का अधिकार देता है।

• लेख में जो परिभाषाएँ दी हैं, उनमें 'हिंसा से दूर' ठीक नहीं; क्योंकि हिंसा से दूर रहने वालों को लड़ाकू शैतान मार डालते हैं।

• जिसमें 'दूषयति' आया है, वह भी ठीक नहीं; क्योंकि इसका 'दूषित करता है' ऐसा अर्थ है।

• 'हिनस्ति दुष्टानिति हिन्दुः'

यह सही है; या ऐसी ही कोई अन्य। — ✍ आचार्य रूपचन्द्र 'दीपक'

महान् तेजों से भासित

प्रेदग्ने ज्योतिषमान् याहि, शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम्।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् या हि, सीस्तन्वा प्रजाः।।

– यजुर्वेद १२.३२

ऋषि – तापसः ।
देवता –अग्निः।
छन्द – अनुष्टुप्।

(अग्ने) हे आत्मन् ! (ज्योतिषमान्) ज्योतिर्मय (त्वं) तू (शिवेभिः) शिव (अर्चिभिः) विद्यादीप्तियों से [और] महान् (भानुभिः) तेजोमय गुण–कर्मों से (भासन्) भासित होता हुआ (प्र याहि) आगे बढ़। (तन्वा) देह से (प्रजाः) प्रजाओं की (मा हिंसीः) हिंसा मत कर।

हे आत्मन् ! तू ज्योतिषमान् है। जैसे अग्नि अपनी प्रकाशमयी ज्वालाओं से अन्धकार का निरास करती है वैसे ही तू अपनी ज्योति से हृदय में व्याप्त तमोगुण को निरस्त कर सकने वाला है। पर तू कोई भौतिक वस्तु नहीं है कि अग्नि के समान तुझमें से ज्वालाएँ निकले। तेरी विद्या–दीप्तियाँ या ज्ञान की अर्चियाँ ही तेरी ज्वालाएँ हैं। अविद्या अन्धकार है और विद्या की किरणें अर्चि है। यद्यपि आत्मा स्वयं ज्योतिर्मय है, तो भी सूर्य जैसे मेघपटल से आच्छादित होकर अपने प्रकाश को पृथ्वी पर नहीं पहुँचा पाता, वैसे ही आत्मा अविद्या से आवृत होकर अपने ज्ञान को हम तक नहीं पहुँचा पाता। जैसे मेघपटल हट जाने पर सूर्य पुनः अपने प्रकाश को विकीर्ण करने लगता है, जैसे ही अविद्यान्धकार का निवारण हो जाने पर आत्मा का विद्या–प्रकाश हमारी हृदय–भूमि पर प्रसृत होने लगता है।

हे ज्योतिर्मय आत्मन् ! तू उन विद्यादीप्तियों से भासित हो। पर अकेली विद्वत्ता, जिसके साथ तदनुकूल गुण और सत्कर्म न हो, भूषण के स्थान दूषण में ही गिनी जाती है। अनेक ऐसे विद्वान् पुरुष हुए हैं, जो विद्वत्ता के विपरीत आचरण के कारण अपकीर्ति के पात्र बने हैं। अतः तू तेजोमय गुण–कर्म–रूप भानुओं से भी भासवान हो। विद्या–दीप्तियों के साथ जब सद्गुण एवं सत्कर्म रूप भानु मिल जायेंगे तब तेरी अद्वितीय आभा होगी।

हे आत्मन् ! तू अपनी देह से प्रजाओं की हिंसा मत कर। देह तुझे हिंसा, घात–पात, उपद्रव आदि करने के लिए नहीं, अपितु अन्य व्यक्तियों के साथ परस्पर प्रेमपूर्वक रहने के लिए तथा आत्मोन्नति और समाज की उन्नति करने के लिए मिली है। अतः देह से वेदोक्त सत्कार्यों को ही कर। यदि तू हिंसा में लग जायेगा, तो तेरा प्रतिरोध करने के लिए अन्य लोग भी हिंसा करेंगे। शनैः शनैः सारे विश्व में ऐसी उग्र हिंसा भड़क उठेगी कि उसका परिणाम प्रलयंकार विनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। अतः तू हिंसा के स्थान पर प्रीति और शान्ति की लहरें बहा, विश्व प्रेम की भावना का प्रसार कर। इससे तेरा भी कल्याण होगा और विश्व का भी कल्याण होगा।

[*साभार – 'वेद मञ्जरी' पुस्तक, लेखक – डॉ.रामनाथ वेदालंकार*]

हो तिमिर कितना भी गहरा,
हो रोशनी पर लाख पहरा,
सूर्य को ऊगना पड़ेगा,
फूल को खिलना पड़ेगा।

हो समय कितना भी भारी,
हमने ना उम्मीद हारी,
दर्द को झुकना पड़ेगा,
रंज को रुकना पड़ेगा।

सब थके हैं, सब अकेले,
लेकिन फिर आएंगे मेले,
साथ ही लड़ना पड़ेगा,
साथ ही चलना पड़ेगा।

– साभार

मानव मूल्यों के आदि स्रोत हैं वेद

– ✍ डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'

सभ्य मानवों का समूह ही 'समाज' कहे जाने योग्य है और इस समाज के निर्माण और स्थैर्य के लिए जिन नियमों–मूल्यों की आवश्यकता होती है उन्हें 'मानव मूल्य' कहा जाता है। वैदिक आर्यों की प्रत्येक अवधारणा का आधार वेद सहिताएँ हैं। यह चार हैं जिन्हें क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के नाम से जाना जाता है। वैदिक सिद्धान्त है कि वेदज्ञान शाश्वत या अपरिवर्तनशील है। इसमें वर्णित सिद्धान्त प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ वर्णन करते हैं। जड़ और जंगम जगत् के प्रत्येक पक्ष का इनमे सम्यक् ज्ञान है। इस प्रकार वैदिक संस्कृति का आधार ये वेद ग्रन्थ ही हैं। इन्हीं के आधार पर ऋषियों–महर्षियों ने समय–समय पर आवश्यकतानुसार अन्य शास्त्रों की रचना की जो मानव को वेदज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रेरित करते रहे हैं। इसका प्रमाण यह है कि प्राचीन इतिहास ग्रन्थों, अन्य वैदिक वाङ्‌मय के ग्रन्थों – अंगों, उपांगों में तत्तद् शास्त्रों का आधार वेद को ही बताया गया है।

वर्तमान में जिन विषयों को पृथक्–पृथक् पढ़ने–पढ़ाने की परिपाटी प्रचलित है उन सारे विषयों का वर्णन वेद में सांकेतिक रूप में पाया जाता है – समाजशास्त्र, आयुर्वेद, राजनीति, धर्मशास्त्र, न्याय –व्यवस्था, अध्यात्म, अर्थशास्त्र, भाषाविज्ञान इत्यादि विषयों का सम्यक् ज्ञान हमें वेदों के अवलोकन से प्राप्त होता है।

ऊपर हमने मानव मूल्यों का संकेत किया। उनसे सम्बन्धित सूत्र भी हमें वेद–मन्त्रों में प्राप्त होते हैं, जो आदर्श रूप होने के साथ–साथ स्वयं में परिपूर्ण और यथा–तथ्य भी हैं, उनमें कोई भ्रान्ति या प्रक्षेप इत्यादि नहीं है क्योंकि वे परमकारुणिक और प्राणिमात्र के परमहितैषी परमपिता परमात्मा द्वारा प्रदत्त हैं। वैसे तो ये मूल्य विवेचना करने पर बहुसंख्या में प्राप्त हो सकते हैं परन्तु अपने अध्ययन की सुविधा के लिए हम उन्हें कुछ ही शीर्षकों में विभाजित कर रहे हैं –

क) धार्मिक मूल्य
ख) नैतिक मूल्य
ग) सामाजिक–पारिवारिक मूल्य
घ) राष्ट्रीय मूल्य
ङ) सार्वभौम मूल्य

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि आवश्यकता–अनुसार मूल्यपरक अनेक शीर्षक–उपशीर्षक वेद मन्त्रों के आधार पर नियत किए जा सकते हैं, परन्तु लेख के लघु कलेवर को ध्यान में रखते हुए यह सीमा बाँधी गई है।

धार्मिक मूल्य –

धर्म शब्द बहुत व्यापक है। शास्त्रों में बहुधा यह पदार्थों के गुणों को दर्शाने के लिए भी प्रयुक्त होता रहा है। मनुष्यों के अधिकारों–कर्त्तव्यों, आचार–व्यवहार इत्यादि को प्रतिपादित करने के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त किया जाता है । दार्शनिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में यह लोक–परलोक की अवधारणा को स्वयं में समाहित करते हुए 'वेद' का पर्याय भी बन जाता है। संक्षेप में कहें तो धर्म का सामान्य अर्थ है – 'सदाचार और आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति के नियम।' इनसे मनुष्य सदाचारपूर्वक जीवन निर्वाह करता हुआ, सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति करता हुआ मोक्ष को प्राप्त करता है। ऐसे धर्म को प्रकट करने वाले कुछ सद्‌गुण इस प्रकार हैं – सत्य, श्रद्धा, दान, अध्ययन, यज्ञ इत्यादि। कहने की आवश्यकता नहीं कि वैदिक ग्रंथों में इन सद्‌गुणों की प्रशंसा में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

नैतिक मूल्य –

यद्यपि धार्मिक मूल्यों का क्षेत्र बहुत व्यापक है और उसमें नैतिक मूल्य सहित अन्य अनेक विध मूल्यों का अन्तर्भाव किया जा सकता है, किन्तु यदि हम इन्हें पृथक् से परिभाषित करना चाहे, तो कह सकते हैं कि ये वे मूल्य है जो मनुष्य सामाजिक व्यवहार में उपयोग में लाता है। व्यक्ति की विद्या, संस्कार और सामाजिक नियम विशेषतः इन मूल्यों के निर्माण और व्यवहार में मुख्य कारक होते हैं। योगसूत्रों में प्रणीत 'यम' योगांग

के अंतर्गत जिन पाँच व्रतों का उल्लेख है, वे सामाजिक व्यवहार में उत्कृष्ट नैतिक मूल्य ही हैं। इसी के साथ मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा इत्यादि का यथायोग्य व्यवहार भी नैतिक मूल्यों में समाहित है, क्योंकि इनमें किसी के प्रति हिंसा, द्वेष, अनिष्ट इत्यादि की भावना नहीं है। ऋग्वेदादि में चोरी, हिंसा इत्यादि की निन्दा तथा अस्तेय, अहिंसा, मित्रता इत्यादि की प्रशंसा प्राप्त होती है।

सामाजिक– पारिवारिक मूल्य –

व्यक्तियों (स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध इत्यादि) से परिवार बनता है। इन्हीं परिवारों से समाज का निर्माण होता है। एक सुखी एवं समृद्ध परिवार के लिए पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों की परिपालना अत्यावश्यक है। वेदों में परिवार के सम्बन्धों – पति–पत्नी, पिता–पुत्र–पितामह, सास–ससुर, देवर, मातृकुल तथा पतिकुल के सम्बन्धों और दायित्वों का सम्यक् उपदेश प्राप्त होता है। सभी को परस्पर सामंजस्य से व्यवहार करने के अनेक मन्त्र हैं।

इसी प्रकार समाज में सभी से व्यक्तिगत रूप से सद् व्यवहार करने, दुष्टों को दण्डित व प्रताड़ित करने और मैत्री भाव की प्रशंसा के सूत्र भी प्राप्त होते हैं। अन्याय, ऊँच–नीच का भेदभाव इत्यादि का निषेध और श्रम, शील, उन्नति की ओर गमन इत्यादि गुणों के वचन हमें प्राप्त होते हैं।

अन्य मत–मतान्तरों में नारी को वह स्थान प्राप्त नहीं है जिसकी वह अधिकारिणी हैं। कहीं नरक का द्वार कह दिया गया तो कहीं वह महाठगनी के रूप में प्रस्तुत की गई, कहीं उसे पुरुषों की दासी और खेतियाँ बता दिया गया। लेकिन, वैदिक वाङ्ग्मय में उसे स्वतंत्रता प्रदान की गई है कि वह पढ़ लिख सके, वेदाध्ययन करके यज्ञ आदि कार्यों में पौरोहित्य कर सके। वह गृह–रूपी साम्राज्य की साम्राज्ञी कही गई है। इत्यादि।

घर के अन्य सदस्यों के भी परस्पर उत्तम और सम्मानपूर्ण व्यवहार के मन्त्र हम पढ़ते हैं।

राष्ट्रीय मूल्य –

राष्ट्र की अवधारणा वैदिक साहित्य में उस अर्थ में नहीं पाई जाती जैसी कि आजकल के सभी राष्ट्र अन्ध राष्ट्रभक्ति के रूप में कर रहे हैं। वैदिक राष्ट्रवाद विश्व के प्राणियों के कल्याण की कामना से निर्मित है और 'धर्म' से युक्त है । कहा गया है कि सुख का मूल धर्म है, धर्म से ही लोक धारण होता है, वेद के विरुद्ध धर्म नहीं है। पुनः वेदमन्त्रों में पाया जाता है कि सत्य का आचरण, उत्तम और शाश्वत ज्ञान का समूह, अवधारणा, क्षात्रबल का सम्पादन और सम्यक् उपदेश, ज्ञान–प्राप्ति तथा ब्रह्मचर्यादि की दीक्षा, सुख–दुख, संकट इत्यादि को सहने का सामर्थ्य, परस्पर सहयोग करना, परमात्मा की उपासना तथा जड़–चेतन देवों की सेवा और परमात्मा का यथार्थ ज्ञान राष्ट्र को स्थिर कर सकता है।

इनके अतिरिक्त धृति–धैर्य, क्षमा, मन का वशीकरण परस्वहरण की चेष्टा या विचार भी नकारना, पवित्रता इन्द्रियजय, बुद्धि की वृद्धि, सम्पूर्ण पदार्थों – जड़–चेतन का यथावत् ज्ञान और उनसे यथावत् उपयोग लेने की विद्या, सत्याचरण, क्रोध न करना इत्यादि दस धर्म लक्षण भी राष्ट्र की उन्नति में सहायक होते हैं। इनसे मनुष्य संकुचित विचारों से ऊपर उठकर प्राणि मात्र की उन्नति के लिए कार्य करने के योग्य होता है।

इसी सम्बन्ध में हम एक आदर्श राष्ट्र की कामना का मन्त्र यजुर्वेद में पढ़ते हैं जहाँ कहा गया है कि राष्ट्र का मस्तिष्क अर्थात् बुद्धिजीवी वा ब्राह्मणवर्ग विद्या–सुशिक्षा–सम्पन्न और निर्लोभी वृति का होने से ब्रह्मतेज के धारक हों, क्षत्रिय महारथी और अनुशासित हो, राष्ट्र की पशु सम्पदा तथा अन्य सम्पत्तियाँ उत्तम हो, स्त्रियाँ भी बलतेजशालिनी हों, युवा वर्ग बलवान् और सभ्य होवे, विजय की कामना वाला होवे। समय पर वर्षा हो, औषधि तथा वनस्पतियाँ यथा–समय तैयार होकर उपयोग में लाने योग्य होंवे! हम अपने राष्ट्र में योग और क्षेम का निर्वहन करने में समर्थ हो सकें।

इस मन्त्र में कहीं पर भी हिंसा, परपीड़न, अत्याचार, विनाश इत्यादि की कामना नहीं की गई है। यह है वैदिक राष्ट्रवाद जो संसार भर को मानवमूल्यों की शिक्षा देता है।

सार्वभौम मूल्य –

योगदर्शन के यम–नियमों के सम्बन्ध में उद्घोषणा की गई है कि ये सार्वभौम नियम है और महाव्रत है। अर्थात् संसार में सभी को इनका पालन करना चाहिए। अन्यत्र यजुर्वेद में कहा गया है कि हे परमात्मान् आपके द्वारा प्रदत्त यह बलशाली ज्ञानेश्वर की प्रदात्री

यह ऐसी प्रथम संस्कृति है जो विश्व भर के मानव द्वारा वरण करने के योग्य है। परमात्मा क्योंकि मानव मात्र का कल्याणकारक है, अतः उसके द्वारा प्रदत्त यह विद्या– सुशिक्षा से उत्पन्न नीति ही वरणीय है। अन्यत्र विश्व भर को एक नीड या घर के समान मानने की उपमा तो आज भी दुःस्वप्न प्रतीत हो रही है और भी कहा गया है कि जो तेरा–मेरा करते हैं वह क्षुद्रमनस्क लोग हैं, उदारचरित वालों के लिए तो पूरी वसुधा एक कुटुम्ब के समान है।

अन्यत्र भी वेद–मन्त्रों में विश्व के समस्त मानवों को मित्र की दृष्टि से देखने तथा उनसे सम्यक् मित्रभाव रखने का उपदेश प्राप्त होता है। संसार के समस्त प्राणियों में रूप–रंग, जाति, देश, जन्म इत्यादि के आधार पर भेदभाव करने का निषेध किया गया है। वैदिक भावना जन्म से नहीं, कर्म से उच्च मानने की रही है। संसार के समस्त वाद – पूँजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद, नक्सलवाद इत्यादि मनुष्यों के मध्य अपवित्र स्पर्धा करते हैं और उन्हें परस्पर एक दूसरे का शत्रु बना कर लड़वाने का कर्म करते हैं। यही कार्य कुछ मत सम्प्रदाय भी करते हैं परन्तु वेद और वैदिक संस्कृति मनुष्यों में सामंजस्य पैदा कर उन्हें परस्पर मित्र और सहयोगी बनाती है।

वेद का 'शान्ति मन्त्र' न केवल विश्व के मानवों को प्रत्युत संसार तथा अंतरिक्ष और द्युलोक में शान्ति की कामना करता है ऐसा शान्ति–मन्त्र विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है जो सभी प्रकार के मत–मतान्तरों, जातियों, क्षेत्रों– देशों से ऊपर उठकर पूरे ब्रह्माण्ड में शान्ति की कामना करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य विश्व भर में व्यक्तिगत सामाजिक पारिवारिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानव मूल्यों की उन्नति को केंद्र में रखकर उसके उत्थान की कामना करता है। यह वैदिक धर्म की विशेषता है कि वह निर्भीक, सर्वकल्याणकारी और सार्वभौम है। इत्योम शम्।

स यज्ञेन वनवद् देव मर्तान् ।।

(ऋग्वेद ५.३.५)

प्रभु यज्ञकर्त्ता मनुष्य को देव बनाकर
शक्तियुक्त कर देता है।

मुग्ध, मगर मन विस्मित है,
मस्तिष्क बहुत चकराया।
जड़-चेतन का यह संश्लेषण,
बिल्कुल समझ न आया ।।

सब शरीर निर्जीव मगर, अद्भुत चैतन्य भरा है।
इच्छा और प्रयत्न मध्य में सामंजस्य बड़ा है।
अनलशिखा-सी उठती तृष्णा,
तभी तृप्ति को पाया।।
जड़-चेतन का यह ----

पत्थर-मिट्टी भी जड़ है पर, इनमें चैतन्य नहीं है।
ताप, शीत, वृष्टयादि द्वंद्व का, भी वैकल्य नहीं है।
क्रिया-प्रतिक्रिया शून्य किस तरह हटकर इन्हें
बनाया।।
जड़-चेतन का यह ----

पंचतत्व जड़ होकर भी अणु-अणु में व्याप रहे हैं।
किसी में कम तो किसी में ज्यादा, सबको माप
रहे हैं।
सृजन और विध्वंस क्रिया का कारण इन्हें
बताया।।
जड़-चेतन का यह ----

सभी वनस्पति हैं चेतन, पर अचर और स्थिर है।
चेतनगर्भा कहलाते, लेकिन क्यों लगते जड़ हैं।
इनके सुख-दुख, राग-द्वेष का पता नहीं चल
पाया।।
जड़-चेतन का यह ----

कृति है तो कर्त्ता भी होगा, तर्क मेरा कहता है।
है असीम सामर्थ्य अगर तो छुप-छुप क्यों रहता
है।
बिना वेद, यह भेद भला, किसने हमको
समझाया।।
जड़-चेतन का यह ----

–✍ वेद कुमार दीक्षित
(देवास)

धर्म की आड़

–✍ पण्डित गणेश शंकर विद्यार्थी

इस समय देश में धर्म की धूम है। उत्पात किए जाते हैं तो धर्म और ईमान के नाम पर, और जिद की जाती है, तो धर्म और ईमान के नाम पर। रमुआ पासी और बुद्धू मियाँ धर्म और ईमान को जाने, या न जाने, परन्तु उनके नाम पर उबल पड़ते हैं और जान लेने और जान देने के लिए तैयार हो जाते हैं।

देश के सभी शहरों का यही हाल है। उबल पड़नेवाले साधारण आदमी का इसमें केवल इतना ही दोष है कि वह कुछ भी नहीं समझता–बूझता, और दूसरे लोग उसे जिधर जोत देते हैं उधर जुत जाता है। यथार्थ दोष है कुछ चलते पुर्जे, पढ़े लिखे लोगों का जो मूर्ख लोगों की शक्तियों और उत्साह का दुरुपयोग इसलिए कर रहे हैं कि इस प्रकार जाहिलों के बल के आधार पर उनका नेतृत्व और बड़प्पन कायम रहे। इसके लिए धर्म और ईमान की बुराइयों से काम लेना उन्हें सबसे सुगम मालूम पड़ता है। सुगम है भी।

साधारण से साधारण आदमी तक के दिल में यह बात अच्छी तरह बैठी हुई है कि धर्म और ईमान की रक्षा के लिए प्राण तक दे देना वाजिब है। बेचारा साधारण आदमी धर्म के तत्वों को क्या जाने ? लकीर पीटते रहना ही वह अपना धर्म समझता है। उसकी इस अवस्था से चालाक लोग इस समय बहुत बेजा फायदा उठा रहे हैं।

पाश्चात्य देशों में धनी लोगों की गरीब मजदूरों की झोपड़ी का मजाक उड़ा दी हुई अट्टालिकाएँ आकाश से बातें करती हैं। गरीबों की कमाई ही से वे मोटे पड़ते हैं और उसी के बल से वे सदा इस बात का प्रयत्न करते हैं कि गरीब सदा चूसे जाते रहें। यह भयंकर अवस्था है। इसी के कारण साम्यवाद बोल्शेविज्म आदि का जन्म हुआ।

हमारे देश में इस समय धन पतियों का इतना जोर नहीं है। यहाँ धर्म के नाम पर कुछ इने–गिने आदमी अपने हीन स्वार्थों की सिद्धि के लिए करोड़ों आदमियों की शक्ति का दुरुपयोग किया करते हैं। गरीबों का धनाढ्य द्वारा चूसा जाना इतना बुरा नहीं है जितना बुरा यह है कि वहाँ है धन की मार, यहाँ है बुद्धि पर मार। वहाँ धन दिखाकर करोड़ों को वश में किया जाता है और फिर मनमाना धन पैदा करने के लिए जोत दिया जाता है। यहाँ है बुद्धि पर पर्दा डाल कर पहले ईश्वर और आत्मा का स्थान अपने लिए लेना और फिर धर्म, ईमान, ईश्वर और आत्मा के नाम पर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए लोगों को लड़ाना– भिड़ाना।

मूर्ख बेचारे धर्म की दुहाई देते और दीन–दीन चिल्लाते हैं, अपने प्राणों की बाजीयाँ खेलते और थोड़े से अनियंत्रित और धूर्त आदमियों का आसन ऊँचा करते और उनका बल बढ़ाते हैं। धर्म और ईमान के नाम पर किए जाने वाले इस भीषण व्यापार को रोकने के लिए साहस और दृढ़ता के साथ उद्योग होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक भारतवर्ष में नित्य–प्रति बढ़ते जाने वाले झगड़े कम न होंगे।

धर्म की उपासना के मार्ग में कोई भी रुकावट न हो। जिसका मन जिस प्रकार चाहे उसी प्रकार धर्म की भावना को अपने मन में जगावे। धर्म और इमान, मन का सौदा हो ईश्वर और आत्मा के बीच का सम्बन्ध हो, आत्मा को शुद्ध करने और ऊँचे उठाने का साधन हो। वह किसी दशा में भी, किसी दूसरे व्यक्ति की स्वाधीनता को छीनने कुचलने का साधन न बने। आपका मन चाहे, उस तरह का धर्म आप माने और दूसरों का मन चाहे, उस प्रकार का धर्म वह माने। दो भिन्न धर्म के मानने वालों के टकरा जाने के लिए कोई भी स्थान न हो। यदि किसी धर्म के मानने वाले कहीं जबरदस्ती टांग अड़ाते हों तो उनका इस प्रकार का कार्य देश की स्वाधीनता के विरुद्ध समझा जाए।

देश की स्वाधीनता के लिए जो उद्योग किया जा रहा था, उसका वह दिन निस्संदेह अत्यन्त बुरा था जिस दिन स्वाधीनता के क्षेत्र में खिलाफत, मुल्ला मौलवीयों और धर्माचार्यों को स्थान दिया जाना आवश्यक समझा गया। एक प्रकार से उस दिन हमने स्वाधीनता के क्षेत्र में एक कदम पीछे हट कर रखा था । अपने उसी पाप का फल आज हमें भोगना पड़ रहा है। देश की

स्वाधीनता संग्राम ही ने मौलाना अब्दुल बारी और शंकराचार्य को देश के सामने दूसरे रूप में पेश किया, उन्हें अधिक शक्तिशाली बना दिया और हमारे पास इस काम का फल यह हुआ है कि इस समय हमारे हाथों ही से बढ़ाई इनकी और इनके से लोगों की शक्तियाँ हमारी जड़ उखाड़ने और देश में मजहबी पागलपन, प्रपञ्च और उत्पात का राज्य स्थापित कर रही है।

महात्मा गांधी धर्म को सर्वत्र स्थान देते हैं। वे एक भी कदम धर्म के बिना चलने के लिए तैयार नहीं। परन्तु उनकी बात ले उड़ने के पहले प्रत्येक आदमी का यह कर्त्तव्य यह है कि वह भली–भाँति समझ ले कि महात्मा जी के 'धर्म' का स्वरूप क्या है? धर्म से महात्मा जी का मतलब धर्म ऊँचे और उदार तत्वों ही का हुआ करता है। उनके मानने में किसे एतराज हो सकता है।

अजाँ देने, शंख बजाने, नाक दबाने और नमाज पढ़ने का नाम धर्म नहीं है। शुद्धाचरण और सदाचार ही धर्म के स्पष्ट चिन्ह है। दो घण्टे तक बैठकर पूजा कीजिए और पाँच वक्त नमाज भी अदा कीजिए परन्तु ईश्वर को इस प्रकार रिश्वत के दे चुकने के पश्चात् यदि आप अपने को दिन–भर बेईमानी करने और दूसरों को तकलीफ पहुँचाने के लिए आजाद समझते हैं तो इस धर्म को अब आगे आने वाला समय कदापि नहीं टिकने देगा। अब तो आपका पूजा–पाठ न देखा जाएगा, आप की भलमनसाहत की कसौटी केवल आपका आचरण होगी। सबके कल्याण की दृष्टि से आपको अपने आचरण को सुधारना पड़ेगा और यदि आप अपने आचरण को नहीं सुधारेंगे तो नमाज और रोजे, पूजा और गायत्री आपको देश के अन्य लोगों की आजादी को रौंदने और देशभर में उत्पातों का कीचड़ उछालने के लिए आजाद न छोड़ सकेगी ।

ऐसे धार्मिक और दीनदार आदमियों से तो वे ला–मजहब और नास्तिक आदमी कहीं अधिक अच्छे और ऊँचे हैं, जिनका आचरण अच्छा है, जो दूसरों के सुख–दुःख का ख्याल रखते हैं और जो मूर्खों को किसी स्वार्थ सिद्धि के लिए उकसाना बहुत बुरा समझते हैं। ईश्वर इन नास्तिकों और ला– मजहब लोगों को अधिक प्यार करेगा, और वह अपने पवित्र नाम पर अपवित्र काम करने वालों से यही कहना पसन्द करेगा मुझे मानो या न मानो तुम्हारे मानने ही से मेरा ईश्वरत्व कायम नहीं रहेगा, दया करके, मनुष्यत्व को मानो, पशु बनना छोड़ो और आदमी बनो।

इंसानियत के दुश्मन

बिखरे हैं दर दर इंसानियत के दुश्मन
सब जगह उनका प्रचण्ड है बोलबाला
अपनी करनी से ऐसे व्यक्ति लोग ही
देश व जाति का करते हैं मुख काला।
मिलावट से मार रहे लोग इंसानों को
दवा, दारू, घी, तेल, मसाले वस्तु तमाम
सड़क मकान बना नकली सामानों से
दुर्घटनाओं के दे रहे भयानक अंजाम।
मर गयी इंसानियत देख मुर्दे के साथ
कितने बैठे उन्हें भी नोचने को तैयार
कहाँ पर जवाब दोगे अपने कर्मों का
लूटने का जीवन में किए जो व्यापार।
रो रही है मानवता,रो रहा विश्व सारा
कोरोना का बढता देखकर अत्याचार
ऐसी परिस्थितियों के आने पर भी ए
मानवता को करते खुलकर शर्मशार।
बहुत सुने थे, बहुत पढे थे यहाँ –वहाँ
आज प्रत्यक्ष देखने को यह मिल रहा
परमार्थ करने को कौन कहे उन सबसे
ऐसे असुरों से धरा,नभ तक हिल रहा।
ले जा भैया लूट सारा धन रोगियों का
लूटकर इसे किस लोक लेकर जाएगा
कर न सका कुछ नेक कर्म स्वयं कभी
अंत समय में दुष्कर्मों पर पछताएगा।
लूटने वाले लूट रहे कफन तक बेचकर
मानवता के शत्रु को एक मौका चाहिए
"आर्य" लुटेरों से भरी दिखती है दुनिया
मानवता को दुश्मन नहीं दोस्त चाहिए।

– अरुण कुमार "आर्य"
वाराणसी चंदौली!

स्वामी दयानन्द सरस्वती की वेदभाष्यपद्धति

–✍ डॉ. भवानी लाल भारतीय

विगत शताब्दी के महान् वैदिक विद्वान् दयानन्द सरस्वती ने अपने धर्म आन्दोलन का आधार ही वेद–प्रामाण्य के सिद्धान्त को बनाया। उनकी समस्त मान्यताएँ वेदमूलक हैं। वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारणार्थ जब उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की तो उसके नियमों का निर्धारण करते समय वेदों के महत्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया गया। इसी कारण आर्य समाज का तृतीय नियम वेद को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक घोषित करता है तथा वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म बताता है। वेद का आधार लेकर चलने वाले स्वामी दयानन्द के लिए यह भी आवश्यक था कि वह वेद के वास्तविक स्वरूप और अर्थ को लोगों के समक्ष रखते, क्योंकि पर्याप्त समय से वेदों का नाम तो लिया जाता रहा परन्तु विगत कई शताब्दियों से उनका अध्ययन और विचार करने की प्रथा समाप्त हो चुकी थी। जिन सायण, महीधर, उव्वट आदि भाष्यकारों ने समय–समय पर वेदों की भाष्य बनाये वे भी स्वामी दयानन्द की दृष्टि से असन्तोषजनक तथा अपर्याप्त थे, क्योंकि उनके द्वारा वेदों के वास्तविक अभिप्राय का उद्घाटन होना तो दूर उल्टे वेदों के विषय में भ्रमपूर्ण धारणा ही अधिक फैलती थीं। अतः स्वामी जी ने यह आवश्यक समझा कि वेदों के वास्तविक अर्थ का प्रकाशन भाष्य रचना द्वारा किया जाय। उनका यह वेदभाष्य संस्कृत में तैयार हुआ तथा उनके सहयोगी पण्डितों ने उसका हिन्दी भाषा में अनुवाद किया।

वेदभाष्य निर्माण करने से पूर्व वेद विषयक समस्याओं पर आलोचनात्मक दृष्टि से अपने विचार व्यक्त करने के लिए तथा वेदार्थ विषयक अपने दृष्टिकोण को समझाने के लिए स्वामी जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका लिखी। स्वामी जी का यह भूमिका ग्रन्थ भी मूल रूप से संस्कृत में ही लिखा गया था। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भाष्यकार ने अपने वेद विषयक विचारों को अत्यन्त युक्ति तथा तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। उनका यह विवेचन न तो सायण की भाँति सम्पूर्णतया मीमांसादर्शन पर आधारित है और न अपने कतिपय समकालीन पाश्चात्य वेदविदों की भाँति। वह ऐतिहासिक तथा विशुद्ध भाषा–वैज्ञानिक का दृष्टिकोण ही लेकर चले हैं।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदोत्पत्ति, वेदानां नित्यत्वविचार, वेद–संज्ञा विचार, ग्रन्थ–प्रमाण्याप्रमाण्य विचार, वेदाधिकार निरूपण, भाष्यकरण, शंका समाधान आदि लगभग चालीस विषयों का आलोचनात्मक तथा युक्ति पूर्ण विवेचन किया गया है। इस प्रसंग में यह जानना आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द की वेद विषयक कतिपय धारणाएँ मध्यकालीन वेदभाष्यकारों से मेल नहीं खातीं, यद्यपि उनके यह विचार उनसे भी अधिक प्राचीन वैदिक वाङ्मय तथा आर्ष चिन्तन पर आधारित हैं। यथा स्वामी दयानन्द वेद को ईश्वरीय ज्ञान तो मानते हैं परन्तु आदि सृष्टि में उसे ब्रह्मा द्वारा अभिव्यक्त न मानकर वेद की चारों संहिताओं को अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा – इन चार ऋषियों पर क्रमशः आविर्भूत होना मानते हैं। वे यह भी स्वीकार नहीं करते कि प्रारम्भ में वेद की संहिता एक ही थी और महर्षि व्यास ने उसका चतुर्धा विभाजन कर वेद–चतुष्टय की कल्पना की। स्वामी जी प्रचलित मान्यता के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद संज्ञा प्रदान नहीं करते। उनकी दृष्टि में मन्त्र भाग ही वेद हैं, यही भाग ईशवरोक्तः, फलतः प्रमाण है। ब्राह्मण भाग तो महीदास ऐतरेय, याज्ञवल्क्य आदि विभिन्न ऋषि मुनियों द्वारा प्रणीत है। दयानन्द ने वेदाध्ययन का अधिकार त्रैवर्णिक द्विज वर्ग तक ही सीमित न रखकर शुद्र तथा स्त्री जाति को भी उसका अधिकार प्रदान किया। उनकी यह भी मान्यता थी कि वेदों में विशुद्ध एकेश्वरवाद का प्रतिपादन है। वे न तो मध्यकालीन विद्वानों की भाँति जड़ पदार्थों में कोई चौतन्य–विशिष्ट देवता मानते हैं और न वैदिक मन्त्रों में चन्द्र, सूर्य, वायु, आकाश, वृष्टि आदि प्राकृतिक पदार्थों और कार्यों की स्तुति ही मानते हैं।

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' की सूक्ति का अनुसरण करते हुए स्वामीजी वेदों में वर्णित इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवताओं को एक ही परमात्मा के गुण–कर्मानुसार विभिन्न नाम स्वीकार करते हैं।

स्वामी दयानन्द के विचार अनुसार वेदों का अर्थ

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध प्रकार से होता है। वेद के पदों का अर्थ करने के लिए निरुक्त प्रतिपादित यौगिक पद्धति स्वामी जी को मान्य है। नैरुक्त पद्धति का अनुसरण करते हुए स्वामी जी वेदों में न तो किसी प्रकार का लौकिक इतिहास ही मानते हैं और न उनमें किसी देशविशेष अथवा जातिविशेष का ऐतिहासिक, भौगोलिक अथवा समाजशास्त्रीय वृतांत ही स्वीकार करते हैं। वेद मन्त्रों का याज्ञिक अर्थ करने के वे विरोधी नहीं हैं, तथापि उनकी मान्यता है कि वेदों में जिस यज्ञ प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है, वह किसी संकुचित कर्मकाण्ड का अर्थ देने वाली न होकर विश्वब्रह्माण्ड का सुचारू रूप से सञ्चालन करने वाली ब्राह्मण शक्ति का ही प्रतीकात्मक वर्णन है।

यज्ञ प्रक्रिया की इस प्रकार प्रतीकात्मक तथा आध्यात्मिक व्याख्या करने के कारण स्वामी जी ने यज्ञ के नाम पर प्रचलित पशु हिंसा तथा अन्य उन सभी जटिल, निरर्थक तथा क्रिया बहुल पद्धतियों का विरोध किया जो वेद के नाम पर मध्य काल में प्रचलित हो गई थीं।

भाष्यभूमिका में स्वामी जी ने अपने वेदविषयक विचारों को तो प्रस्तुत किया ही है साथ ही वेद में ज्ञान विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्त जो अपने मूल रूप में पाये जाते हैं, उनका भी उन्होंने स्थालीपुलाकन्याय से उल्लेख किया है, यथा – ब्रह्मविद्या, सृष्टि विद्या, पृथिवी आदि लोकभ्रमण विषय, धाराणाकर्षक विषय, प्रकाश्य–प्रकाशक विषय, गणित विद्या, वैद्यक शास्त्र आदि विविध विषयों का निरूपण करने वाले वेद मन्त्र उन्होंने प्रस्तुत किये हैं। इसी प्रकार विवाह, नियोग, राजप्रजा धर्म, वर्णाश्रम, पञ्चमहायज्ञ आदि सामाजिक तथा धार्मिक इतिकर्त्तव्य–विषयक अपने विचारों को भी वेद मन्त्रों के आधार पर निरूपित किया गया है।

दयानन्द सरस्वती के वेद विषयक विचारों का सिंहावलोकन कर लेने के पश्चात् उनके द्वारा रचित वेदभाष्य का विवरण देना आवश्यक है –

ऋग्वेद भाष्य –

वेद की रचना का उपक्रम स्वामी जी ने १९३३ विक्रमी के आसपास किया। सर्वप्रथम ऋग्वेद के प्रथम सूक्त के भाष्य को संस्कृत और हिन्दी में तैयार कर प्रकाशित किया और उस पर सम्मती प्रकाशित करने के लिए काशी, कलकत्ता तथा लाहौर की पण्डित–मण्डली के पास भेजा वेदभाष्य का नमूना सर्वश्री आर. टी. एच ग्रिफिथ, प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज बनारस सी. एच टोनी, प्रिंसिपल प्रेसीडेंसी कॉलेज कलकत्ता, हैड पण्डित ओरियण्टल कॉलेज लाहौर, पं. ऋषिकेश भट्टाचार्य, द्वितीय पण्डित ओरियण्टल कॉलेज लाहौर, पण्डित भगवानदास, सहायक प्राध्यापक, गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर तथा पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न, प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज कलकत्ता के पास भेजा गया।

इन विद्वानों की सम्मितियाँ स्वामी जी की वेदभाषा शैली के प्रतिकूल थी। अतः स्वामी जी ने अपनी वेद प्रणाली के औचित्य को सिद्ध करने के लिए 'भ्रान्ति निवारण' शीर्षक पुस्तक लिखी जिसमें पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न द्वारा प्रस्तुत किए आक्षेपों का उत्तर दिया गया है।

ऋग्वेदभाष्य का लेखन मार्गशीर्ष शक्ला ६,१९३४ वि. से हुआ। यह भाषा मासिक पत्र के रूप में धारावाहिक प्रकाशित होता था। उस काल में यूरोपीय तथा भारतीय प्राच्य विद्याविद् विद्वान् स्वामी जी के भेदभाव के ग्राहक थे। मैक्समूलर और मोनियर विलियम्स जैसे संस्कृतज्ञ विद्वानों ने स्वामी जी के भाषा का महत्व स्वीकार किया था। स्वामी दयानन्द अपने जीवनकाल में इस भाष्य को पूरा नहीं कर पाए। सातवें मण्डल के ६२वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र पर्यंत ही उनका भाष्य मिलता है। इस प्रकार उन्होंने ऋग्वेद के ५६४६ मन्त्रों पर भाष्य लिखा।

भाष्य लिखने की स्वामी जी की अपनी शैली है। प्रथम वे मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द तथा स्वर का संकेत देकर मन्त्र के प्रतिपाद्य विश्व का उल्लेख करते हैं। यहाँ यह लिख देना अप्रासंगिक न होगा कि वेद–भाष्यकारों में स्वामी दयानन्द ने ही प्रथम बार वेद मन्त्रों के स्वरों का निर्देश दिया है। पुनः मूल मन्त्र को लिखकर उनका पद पाठ किया गया है। तत्पश्चात् वे संस्कृत में पदार्थ, अन्वय और भावार्थ लिखते हैं। अपने अर्थ की पुष्टि में स्वामी जी शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों, निरुक्त–निघण्टु आदि हुए वेदांगों का प्रमाण देते चलते हैं। वे वैदिक शब्दों को यौगिक मानते हैं तथा शब्द के निर्वचन के आधार पर उसके एकाधिक अर्थ करते हैं। स्वामी दयानन्द का यह ऋग्वेद–भाष्य नौ खण्डों में वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित हुआ है।

यजुर्वेद भाष्य –

इसका आरम्भ स्वामीजी ने पोष शुक्ला १३ सम्वत् १९३४ वि. को किया। उसे पूरा करने में उन्हें प्रायः ५

वर्ष लगे। इसका समाप्ति काल मार्गशीर्ष कृष्ण १ सम्वत् १९३६ वि. है। भाषा आरम्भ में स्वामी जी ने निम्न पद्य द्वारा मंगलाचरण किया है –

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृत ज्ञानं गुणैरीश्वर–
स्तं तत्व क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च ।
ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं
भाष्यं काम्यमथो कियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया।।

यजुर्वेद के स्वामी कृत संस्कृत–भाष्य का हिन्दी अनुवाद पण्डित भीमसेन तथा पण्डित ज्वालादत्त ने किया था। स्वामी जी ने इस भाष्य में याज्ञिक पद्दति को पूर्णतया छोड़ कर व्यवहारिक प्रक्रिया का अनुसरण किया है।

ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली –

ऋषि दयानन्द का वेदभाष्य एक ओर जहाँ सायण, उव्वट, महीधर आदि आचार्यों के भाष्य से भिन्न है वहाँ ग्रिफिथ, मैक्समूलर, मैकडॉनल आदि पाश्चात्य विद्वानों के भाष्य एवं अर्थ–पद्धति से भी उसकी पृथक्तता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। सायण आदि प्राचीन आचार्यों ने वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार किया था, परन्तु उसके अर्थ को वास्तविक शैली से अनभिज्ञ होने और पौराणिक संस्कारों से प्रभावित होने के कारण वे इस सिद्धान्त का सर्वत्र रक्षण नहीं कर सके। उन्होंने अनादि वेदज्ञान में भी ऋषियों और राजाओं का इतिहास मान लिया और पशुहिंसा आदि के निर्मूल विचारों से अपने भाष्यों को दूषित कर दिया। दूसरी ओर ग्रिफिथ आदि 'पाश्चात्य भाष्यकारों के लिए वेद केवल ऐतिहासिक पुस्तक मात्र थी जो आर्यों के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और आर्थिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।'

ऋषि दयानन्द जहाँ वेद को ईश्वरीय ज्ञान घोषित करते हैं, वहाँ वे उसे धर्म का मूलाधार भी मानते हैं। मनु को शब्दों में उन्होंने धर्म जिज्ञासुओं के लिए श्रुति को ही परम प्रमाण माना है। ऋषि दयानन्द ने वेदार्थ की आर्ष प्रणाली को स्वीकार किया। इससे उनका तात्पर्य यह था कि प्राचीन ब्राह्मण, निरुक्त, अष्टाध्यायी आदि ऋषिकृत ग्रन्थों की सहायता से ही वेद का वास्तविक अर्थ निश्चित हो सकता है। सायण आदि ने इसकी बहुत कम सहायता ली है और यत्रतत्र अपनी कल्पना से ही काम चलाया है।

पाश्चात्य विद्वानों के भाष्य तो सायण के अर्थों का ही अनुसरण करते हैं, इसलिए जो दोष सायण के हैं, वे इनमें भी आ गये हैं। वास्तव में बात यह है कि लौकिक संस्कृत एवं वैदिक संस्कृत में बहुत अन्तर है। लौकिक भाषा में 'अही' साँप को कहते हैं परन्तु वेद में इसके 'मेघ' आदि कई अर्थ हैं। इसी नियम के अनुसार जो लौकिक संस्कृत का ही ज्ञान रखते हैं उनकी वेद में गति होना कठिन है – ऋषि ने इसी सत्य का उद्घाटन किया । निरुक्त आदि शास्त्रों में वैदिक भाषा के शब्दों का जिस शैली से निर्वचन किया गया है, ऋषि को वही मान्य था, अतः उनकी भाष्य–शैली निरुद्ध–पद्धति के सर्वथा अनुकूल है। एक बात और भी है – वैदिक शब्दों के अर्थ धात्वज होने के कारण यौगिक भी होते हैं, रूढ़ नहीं। यही कारण है कि वेद में धातु के आधार पर एक शब्द के अनेक अर्थ लगाए जा सकते हैं और प्रकरणानुकूल वे सब ठीक होते हैं। उदाहरण के लिए लोक में 'अग्नि' केवल आग को कहते हैं परन्तु इसकी निरुक्ति इस प्रकार है 'अग्नि कस्मात् ? अग्रणी भवति' अर्थात् आगे बढ़ने और गमनशील होने के कारण अग्नि शब्द ईश्वर, आत्मा, राजा, नेता, विद्वान्, अध्यापक और भौतिक अग्नि सबके लिए प्रयुक्त होता है। इस शैली का अनुकरण पर ऋषि ने यह सिद्ध किया है कि वेदों में जो किन्हीं विशेष व्यक्तियों के नाम दिखाई पड़ते हैं, वास्तव में वैसे नहीं हैं। शतपथ के प्रमाणानुसार उन्होंने वसिष्ठ आदि को 'प्राण' माना है – वसिष्ठो वै प्राणः।

इसी यौगिकवाद का अनुसरण करने के कारण ऋषि दयानन्द वेद में लौकिक इतिहास की सत्ता स्वीकार नहीं करते। अनादि ईश्वर प्रदत्त ज्ञान में साधारण मानवों का इतिहास होना सम्भव नहीं। पुरूरवा, उर्वशी आदि की कथा तथा इन्द्र और वृत्र का युद्ध, सुदास, दिवोदास आदि राजाओं का वर्णन आदि जो वेद में बताये जाते हैं, उनके वास्तविक तात्पर्य को समझ लेने पर ये इतिहास की घटनाएँ नहीं रहती। वृत्र और इन्द्र का युद्ध बादल और सूर्य का युद्ध है, जो सदा होता रहता है। ऐसे इतिहास माने जाने वाले स्थलों की व्याख्या ऋषि ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में विशेष रुप से की है। यह निश्चित है कि किसी समय में वेद में इतिहास मानने वाला एक सम्प्रदाय अवश्य विद्यमान था क्योंकि निरुक्त में ही उसकी उपस्थिति का प्रमाण – तत्को वृत्राः, मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोसुरो इत्यैतिहासिकाः' आदि वाक्यों में मिलता है। यास्क महाराज ने अनित्य इतिहास के इस सिद्धान्त का स्थान–स्थान पर निराकरण किया है। महर्षि दयानन्द

को भी यह मत ही अभिप्रेत था।

ऋषि के वेदभाष्य की एक और विशेषता यह है कि उन्होंने वेद मन्त्रों के विविध अर्थ किये हैं — आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक । यह ऋषि का मौलिक अविष्कार नहीं था। प्राचीन स्कन्द स्वामी, भट्ट भास्कर, दुर्गाचार्य आदि वैदिक विद्वानों ने इस प्रक्रिया का समर्थन किया है। सायण आदि का दृष्टिकोण एकांगी था। उन्होंने वेदों की याज्ञीक कर्मकाण्डपरक व्याख्या तक ही अपने भाष्य को सीमित रक्खा। इसका एक भयंकर परिणाम यह निकला कि वेद की उदात्त और जीवन को उत्थान की ओर प्रेरित करने वाली शिक्षाओं को भूलकर लोग उन्हें केवल यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली वस्तु ही समझने लगे। तभी तो सायण ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ' जैसी उच्च भावना रखने वाली ऋचा को सोमरस पीसने और छानने के कर्म में विनियुक्त किया। यह कर्मकाण्ड की लीला बड़ी विचित्र है। 'शन्नो देवी...' मन्त्र इसलिए शनि ग्रह की पूजा में प्रयुक्त होने लगा। प्रकरणानुकूल वेदमन्त्रों की व्याख्या करना और उनसे राजधर्म, भौतिक विज्ञान, गृहस्थ जीवन, सृष्टिविज्ञान आदि विद्याओं का निष्कर्ष प्रकाशित करना ऋषि का ही काम था।

वेदभाष्य की परम्परा में ऋषि दयानन्द ने एक और क्रान्तिकारी परिवर्तन किया था — वेदों से एकेश्वरवाद की सिद्धि। पाश्चात्यों का वेदों पर सबसे बड़ा आक्षेप यही था कि वेदों में विविध प्राकृतिक शक्तियों की पूजा और उपासना का विधान है। प्राचीन आचार्यों को ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता का ज्ञान नहीं था, इसलिए जब सृष्टि की शैशवावस्था में प्राकृतिक और शक्तियों से उन्हें पीड़ा पहुँचती, तो उससे निस्तार पाने के लिए वे सविता, इन्द्र, अग्नि,पूषा, सोम आदि की स्तुति करते। इन स्तुतियों का ही संग्रह ऋग्वेदादि है। महर्षि ने इस कल्पना का प्रमाण पूरस्र खण्डन किया। उन्होंने कहा कि 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति— अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः' (ऋग्वेद)। इस प्रकार के मन्त्रों के रहते वेदों में बहुदेवतावाद का आरोपण करना दु:साहस मात्र है। श्री अरविन्द आदि विद्वानों ने ऋषि के इस मन्त्र को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। एकेश्वरवाद की स्थापना के लिए वैदिक साहित्य में ऋषि का नाम अमर रहेगा।

ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेद मनुष्यों के लिए सार्वभौम और सर्वकालिक नियमों का प्रतिपादन करता है। यह ऋषि का निश्चित मत है। संसार की समस्त भौतिक और आध्यात्मिक विद्याओं का मूल वेद में ढूंढा जा सकता है, यह ऋषि का दावा था। उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वैद्यक, गणित, ज्योतिष, तार, विमान आदि विविध विद्याओं की प्रतिपादक ऋचाओं का संकलन किया है। यद्यपि पण्डित बलदेव उपाध्याय जैसे पूर्वाग्रह रखने वाले विद्वानों ने ऋषि के इस कथन का मजाक उड़ाया है, परन्तु अरविन्द जैसे सुप्रसिद्ध योगी और विद्वान् ने ऋषि के इस मत को सादर ग्रहण करते हुए उसकी सत्यता में निश्चित विश्वास व्यक्त किया है।

वेद का ज्ञान देश, काल, सम्प्रदाय और वर्ग के संकुचित भेदों से ऊपर उठा हुआ है। इसलिए कुरान, बाइबल, जेन्दावस्ता आदि जो पुस्तकें इलहामी होने का दावा रखती हैं वे वेद के समक्ष नहीं टिकती। इन ग्रन्थों का निर्माण देश विशेष की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए और किसी सम्प्रदाय या समूह विशेष के हित को दृष्टि में रखते हुए हुआ था। इन ग्रन्थों की उपयोगिता भी सीमित समय के लिए है। उनके निर्माता मनुष्य विशेष थे।

यदि वेद को ईश्वरीय माना जाए तो उसका उपदेश मनुष्य मात्र के लिए होना चाहिए। मध्यवर्ती सम्प्रदायचार्यों ने स्त्री और शूद्रों के लिए वेदाध्ययन का निषेध कर दिया था। कपोल—कल्पित सूत्रों व स्मृतियों में तो वेद के पढ़ने और सुनने वाले शूद्रों के लिए कठोर शारीरिक दण्ड की व्यवस्था भी की गई थी। ईश्वरीय ज्ञान के नाम पर होने वाले इस अमानुषी अत्याचार को ऋषि दयानन्द का दयालु हृदय नहीं देख सका। अतः लोकोपकार के लिए समाधि—अवस्था में उसने 'यथेमां वाचं कल्याणीं' इस यजुः मन्त्र के अर्थ का साक्षात्कार करते हुए संसार के समक्ष अपनी गम्भीर वाणी से यह घोषणा की '' परमात्मा का यह आदेश है कि मैं यह कल्याणकारी वाणी मनुष्य मात्र के हित के लिए प्रदान कर रहा हूँ। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सेवक तथा दास प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस वाणी का उपदेश है।'' ऋषि की उदारता का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

ऋषि दयानन्द और पाश्चात्य विद्वानों की भाष्य प्रणाली में मौलिक भेद उत्पन्न होने का कारण यह था कि पाश्चात्य लोग जहाँ डार्विन के विकासवाद के अनुयायी होने के कारण वेदों को असभ्य मानव की अटपटी वाणी से अधिक महत्व देने के लिए तैयार नहीं थे, वहाँ ऋषि उन्हें प्रभु—प्रणीत तथा ज्ञान—विज्ञान का

भण्डार मानते थे। ऋषि ने पाश्चात्यों द्वारा वेदों पर लगाई गई अनेक भ्रान्तिपूर्ण उपपत्तियों का खण्डन किया यथा अश्लीलता, जादू, टोना, अस्पष्टता आदि का निराकरण। मन्त्रों के गुढ़ भावों को समझने में असमर्थ होने के कारण ग्रिफिथ आदि विद्वानों ने मन्त्र में अश्लीलता और अस्पष्टता का दर्शन किया है। उन्होंने कहीं–कहीं ऋचाओं के लैटिन भाषा में अर्थ इसलिए किये हैं कि वह उन्हें अत्यन्त असभ्यतापूर्ण जान पड़े। परन्तु वास्तव में वहाँ ऐसा कुछ नहीं था। वेदार्थ की वास्तविक परिपाटी को न समझने वालों के लिए ही ये कठिनाइयाँ आती हैं। उन्हें ही वेदों में पशु हिंसा के दर्शन होते हैं और वे ही अथर्ववेद के मन्त्रों में जादू–टोने और अभिचारों की क्रियाएँ देखते हैं। वास्तव में वेद इन दोषों से सर्वथा पृथक् है तथा सत्व गुण से युक्त हैं यह ऋषि ने ही प्रतिपादित किया है।

अन्त में ऋषि ने वेदसंज्ञा विचार प्रकरण के अन्तर्गत यह भी सिद्ध कर दिया कि संहिता–भाग ही वास्तव में वेद है। सनातनी अब भी ब्राह्मण और उपनिषद् को वेद मानते हैं, चाहे वे इसे सिद्ध कर सके या नहीं। ऋषि ने ईश्वरकृत संहिता–भाग और उनके व्याख्यान स्वरूप ब्राह्मण भाग का भेद स्पष्टतया सिद्ध कर दिया और अज्ञानियों में जो यह धारणा फैली हुई थी कि वेदों को शंखासुर पाताल में ले गया, उस अज्ञान रूपी शंखासुर का हनन कर ऋषि ने वेदों का उद्धार किया।

बहिर्भ्रमति यः कश्चित् त्यक्तवा देहस्थमीश्वरम्।
सो गृहे पायसं त्यक्तवा भिक्षामटति दुर्मतिः।।

भावार्थ – जो व्यक्ति अपने शरीरस्थ मन मंदिर में स्थित ईश्वर को छोड़कर संसार के सभी तीर्थों एवं मंदिरों में उसको प्राप्त करने हेतु परिभ्रमण करता है वह उन मूर्ख के समान होता है, जो अपने गृह में स्थित सुमधुर पायस (खीर) का परित्याग कर अन्यत्र भिक्षा मांगता है।

तू ही सरलतम,
तू ही कठिनतम,
तू है अजन्मा, तू सर्वजन्मा
तू सर्वव्यापी, तू सर्वन्यासी
तू है सनातन, तू है चिरंतन।

तू है अबूझा मगर सभी ने
तुझे है बूझा उन्हें लगा है।
तू है अकल्पित मगर जहां भी
करी कल्पना वहां मिला है।

यह दृश्य सारा तेरा ही चिंतन
अदृश्य सारा तेरा ही नर्तन।
तू सर्वव्यापी तू सर्वन्यासी
तू है सनातन तू है चिरंतन।

न सप्तपुरियों में तू कहीं भी
न ज्योतिर्लिंगों में तू मिला है।
सुगंध तेरी सभी जगह पर
समझ न आए कहां खिला है।

तू भाव प्रतिमा का सत्य दर्शन
तू पंच भूतों का रम्य उपवन।
तू सर्वव्यापी तू सर्वन्यासी
तू है सनातन तू है चिरंतन ।
कहीं पे चिड़ियों की चहचहाहट में तेरा
स्वर मुस्कुरा रहा है
कहीं पे बूंदों की छम छमों में
तू जैसे खुद गुनगुना रहा है।

हर एक कड़ में तेरी ही धड़कन यह
स्वर हैं सारे तेरा ही गुंजन।
तू सर्वव्यापी तू सर्वन्यासी
तू है सनातन तू ही चिरंतन ।

–✍ सुशील सरित
आगरा (उ.प्र.)

हमारी मानसिकता पराधीन होती जा रही है

–✍ डॉ. सीतेश आलोक

किसी देश की स्वतन्त्रता और परतन्त्रता उस देश के नागरिकों के विचारों, कार्यों, मानसिक स्थिति और सांस्कृतिक चेतना पर निर्भर करती है। अंग्रेजों ने भारतीयों को सत्ता सौंपी और देश 15 अगस्त 1947 को स्वधीन हो गया। लेकिन भारतीय अंग्रेजी भाषा, विदेशी संस्कृति, विदेशी कानून, विदेशी राजनीति और विदेशी जीवनशैली को नहीं छोड़ पाए। बहत्तर वर्षों से कहने को तो भारतीयों का भारत में राज्य है, लेकिन वह राज्य अंग्रेजी राज व्यवस्था से मिलता–जुलता है या अंग्रेजी शासन व्यवस्था की प्रतिछाया (फोटो कापी) है। शिक्षा, संस्कृति, विचार, मान्यताएं, धारणाएं और व्यवहार अंग्रेजों की राज्य जैसे हैं। इतिहास उन वामपंथियों द्वारा लिखा गया और बहत्तर वर्षों से देश में पढ़ाया जाता है जो कहने को तो भारतीय हैं लेकिन उनकी अभिरुचि, मानसिकता, सांस्कृतिक चेतना, विचार, मान्यताएं और दृष्टिकोण अंग्रेज इतिहासकारों जैसे हैं। पिछले बहत्तर वर्षों से इतिहास में जो भी लिखा–पढ़ा गया उसने भारतीयों को मानसिक पराधीनता के बाहुपॉश में जकड़ने का कार्य किया। हम भारतीय कहने को तो स्वधीन हैं, लेकिन आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, वैचारिक और कानूनी–तौर पर विदेशी पराधीनता में जकड़े हुए हैं। वेद शास्त्र, पुराण, गीता, रामायण, महाभारत और आर्य–संस्कृति के ध्वज–वाहक अन्य धर्म – संस्कृति के ग्रन्थों को पढ़ने–पढ़ाने के बाद भी स्वधीनता और राष्ट्र–चेतना के प्रवाह में साथ–साथ नहीं चल पाए हैं। हमारी मानसिकता किस तरह विदेशी विचारधारा में रंगती जा रही है, प्रस्तुत लेख में वर्णित है। लेख कैसा लगा, यह तो आप के विचारों से पता चलेगा।

–सम्पादक

हम कितने स्वतन्त्र हैं

स्वाधीनता का स्वर्ण जयन्ती वर्ष बीत गया (अगले वर्ष प्लैटिनम जयन्ती (75वर्ष) बनाई जाएगी–***सम्पादक***)। संस्कार उत्सवों का उन्माद थम रहा है और आयोजित आयोजनों का सिलसिला समाप्त हो गए। कम से कम अगले पच्चीस वर्षों के लिए (–लेख लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व लिखा गया था)।

परन्तु इस थमे हुए कोलाहल में सम्भवतः हमें वे प्रश्न पुनः सुनाई देने लगें जो कि हमारे देश के लिए, हमारी संस्कृति के लिए और हमारे आत्म–सम्मान के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

वस्तुतः किसी राष्ट्र के जीवन में पचास (अब तिहत्तर वर्ष के लिए) वर्षों का कोई विशेष महत्व नहीं होता–यदि होता है तो राष्ट्र के जीवन का प्रत्येक वर्ष, उसका प्रत्येक दिन महत्वपूर्ण होता है–निरन्तर यह देखने के लिए कि क्या राष्ट्र ठीक दिशा में प्रगति कर रहा है। स्वाधीनता के पचासवें वर्ष को उत्सवों में गँवा देना मात्र कोई पाश्चात्य परम्परा हो सकती है–भारतीय नहीं। दुर्भाग्य से यही हुआ, स्वाधीनता का पचासवाँ वर्ष उत्सवों में ही बीत गया। इसमें न तो किसी को कोई गम्भीर चिन्तन के लिए समय मिला और न सिंहालोकन के लिये। देश की स्थिति को लेकर जो प्रश्न हमारे सामने खड़े थे, आज भी ज्यों के त्यों खड़े हैं, सम्भवतः अब कुछ और अधिक मुखर होकर।

इन प्रश्नों में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह हमारी स्वतंत्रता और स्वतंत्रता की वास्तविक परिकल्पना से जुड़ा है। दुर्भाग्य यह है कि इस स्वाधीनता के पिछले पचास वर्षों की राजनीतिक गतिविधियों ने हमें यह सोचने–समझने का अवसर ही नहीं दिया कि क्या वास्तव में यह वह स्वतंत्रता है जिसका स्वप्न हम देखा करते थे ? क्या मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता या सत्ता का हस्तान्तरण ही स्वतंत्रता है ?

दुर्भाग्य यह भी है कि आज पश्चिमी शिक्षा हमें यही बता रही है। पिछले सैकड़ों वर्षों की दासता का दुष्परिणाम यह भी है कि हम शासकों द्वारा दी हुई परिभाषाओं को स्वीकार करते हुए ही स्वाधीनता के नाम पर मिली हुई राजनैतिक सत्ता को ही सब कुछ अपना

अभीष्ट मानकर प्रसन्न हो लें और भूले रहें कि स्वाधीनता का सम्बन्ध आत्म–सम्मान से भी है, अपने संस्कारों से भी है, अपनी संस्कृति से भी है।

पराधीनता को जो अभिशाप कहा गया है, अपितु इसलिये कि हम पर अपनी प्रभुसत्ता बनाए रखने के लिए वह विदेशी शासक, छल, एवं बल से हमारे आत्मविश्वास पर प्रहार करता है। हमें बताता है कि हमारी भाषा, संस्कृति, परिधान, जीवनशैली, विचारधारा आदि सभी कुछ निम्न श्रेणी के हैं–आत्मविश्वास खोकर दास अपने शासकों की भाषा अपनाता है, उनका परिधान अपनाता है, उनकी जीवन शैली अपनाता है, उनकी नकल में भी गौरव का अनुभव करता है।

अपनी पराधीनता के काल में भारत पर भी यही सब बीता। इस्लामी शासकों ने हममें हर प्रकार की हीन भावना भरने का प्रयत्न किया–हमें क़ाफिर कहकर और फिर कहीं बलपूर्वक तो कहीं धन, पद आदि का प्रलोभन देकर व्यापक रूप से धर्म परिवर्तन किया। उसके बाद अंग्रेजों ने आकर वही सब किया–कहीं हमें तुम काला आदमी कहकर और कहीं आर्थिक–सामाजिक उत्पीड़न देकर। इसी बीच एक वामपंथी आक्रमण भी हुआ जिसने हमारे धर्म एवं संस्कारों पर ही कुठाराघात किया–हमें संकीर्ण मानसिकता वाला कहकर और कभी हमारे समाज के विभिन्न घटकों को स्वयं अपनी ही मान्यताओं के विरुद्ध उकसाकर।

कारण एक यह भी रहा कि इस बीच सारी शिक्षा पद्धति शासकों के हाथ में रही। हमें जीविकोपार्जन के लिए, अथवा समाज में कोई सम्माननीय स्थान पाने के लिए, वही पढ़ने को मिला जो शासकों ने हमें पढ़ाना चाहा। कहीं हमारे पुस्तकालय जलाए गए और कहीं अर्थाभाव के कारण हम अपनी विद्या का प्रसार–प्रचार करने में असफल रहे।

शीघ्र ही वह स्थिति आ गई जब हमें अपना खोखला आत्म–सम्मान प्रदर्शित करने के लिए शब्दाडम्बर का आश्रय लेना पड़ा–ऊपर से चाहे जो भी हो हमारा मन भारतीय है। लगभग पचास वर्ष पुराने लोकप्रिय–ऊपर से चाहे जो भी हो हमारा मन भारतीय है। लगभग पचास वर्ष पुराने लोकप्रिय फिल्मी गाने 'मेरा जूता है जापानी, यह पतलून इंगलिस्तानी, सर पर लाल टोपी रूसी फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी' में यही मानसिकता उभरकर सामने आई थी। परन्तु स्थिति वहाँ भी नहीं रुकी। दिन–प्रतिदिन और भी विकृत होती गई। अब घरों में क्या और बाहर क्या, अंग्रेजी का वर्चस्व हावी है। परिधान पूरी तरह बदल चुके हैं। वर्तमान नई पीढ़ी को न अपने धर्मग्रन्थों का ज्ञान है और न साहित्य का। सम्बन्ध बदलकर मॉम–डैड नहीं हुए, घरों में किचन–बाथरूम और टेबल–चेयर की भाषा प्रचलित है। नई पीढ़ी जन्मदिन नहीं जानती, केक काटकर और 'हैपी बर्थडे टू–यू' धुनों पर उछलना कूदना ही जीवन शैली बन गयी है।

यह सब क्यों हुआ, कैसे हुआ ? सम्भवतः इसलिए कि स्वतंत्रता को हमने मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता अथवा सत्ता–हस्तान्तरण के रूप में ही देखा। पश्चिमी शिक्षा ने हमें कभी यह सोचने ही नहीं दिया कि स्वतंत्रता आम्मसम्मान प्राप्त करने का पहला सोपान है। स्वतंत्रता प्राप्त करना एक महान् लक्ष्य के लिए साधन है–अन्त नहीं। यही कारण है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में रूसी तर्ज़ पर आर्थिक विकास की योजनाएँ बनीं, कभी सांस्कृतिक एवं नैतिक पुनरुत्थान की दिशा में कोई कार्य नहीं हुआ। हम भूल गए कि मात्र आर्थक विकास हमें विलास और फिर विनाश की ओर ले जाता है। राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए आर्थिक विकास के साथ सुसंस्कार भी आवश्यक होते हैं नैतिक एवं चारित्रिक मानदण्ड भी आवश्यक होते हैं।

आज सर्वाधिक आवश्यकता है अपनी प्राथमिकताओं को रेखांकित करने की और प्रगति की दिशा में संशोधन करने की। निरन्तर याद रखने योग्य बात यह है कि अपनी संस्कृति से कटकर हम थोड़ी–बहुत समृद्धि भले ही पा लें, न तो स्थायी विकास पा सकते हैं और न विश्व में सम्मान।

धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञापालन, परोपकार, सत्यभाषणादि–लक्षण सब आश्रमियों का अर्थात् सब मनुष्यमात्र का एक ही है।

– सत्यार्थ प्रकाश
पञ्चम समुल्लास

क्या आर्यसमाज कोरोना काल का उपयोग कर सकता है ?

– ✍ डॉ. श्रीगोपाल बाहेती, पूर्व विधायक

आप को लगेगा यह क्या बात ? आप चौंके नहीं विचार करे। अब बड़े बड़े डॉक्टर, वैज्ञानिक भी कहने लग गए कि सात्विक भोजन व सात्विक दिनचर्या वालों को कोरोना या तो असर नही करता और करता भी है तो रोग की गम्भीरता इतनी नहीं होती की रोगी की जान खतरे में हो। ऐसे रोगी सिर्फ गोली से ही ठीक हो रहे है चाहे किसी भी आयु के हो।

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने जो पंच यज्ञ लिखे हैं। उनमें दो ब्रह्मयज्ञ व देवयज्ञ कर्त्ता को तो स्वस्थ रखता ही है घर परिवार व समाज को भी प्रदूषण से मुक्त करता हैं। अब आप कल्पना करे कि यज्ञ घर घर, गली–गली, गाँव–गाँव हो तो कहाँ टिकेगा कोरोना, कैसे टिकेगा कोरोना ? यदि हम इस यज्ञ का प्रचार करे और जन–जन तक पहुँचाये तो निश्चय ही जहाँ हम यज्ञ का प्रचार करेंगे वही समाज को कोरोना मुक्त करने में मददगार बनेंगे। आवश्यकता हैं हम सक्रिय होवे, आर्यसमाज के भवनो से बाहर निकले। आज सभी कोरोना से डरे हुए है और हाथ पैर मार रहे है। कोरोना पर विजय पाने का यज्ञ एक ऐसा हथियार है जो सङ्क्रमण को कम करेगा और समाप्त करेगा। रोगी दवा के साथ यज्ञ धूम का सेवन करे और प्रभु से प्रार्थना करे तो रोगी का मनोबल तो बढ़ेगा ही साथ ही ओक्सीजन लेवल भी बढ़ेगा। आज सभी बड़े–बड़े डॉक्टर व अस्पताल यही कह रहे हैं ओक्सीजन लेवल कम न हो हौसला कम न हो तभी आप कोरोना को हरा सकते हो और खुद को उबार सकते हो।

जब हवन प्राणायाम अभी हर व्यक्ति की आवश्यकता है। ऐसे में अगर आप संध्या, यज्ञ व प्राणायाम की बात करोगे तो बात उनके गले भी उतरेगी और वो करने को भी तैय्यार होंगे और हमारा तो काम है सबकी शारीरिक, आत्मिक उन्नति करना, तो हम हमारा कर्त्तव्य निभाएँगे और समाज का हित करेंगे। जब एक व्यक्ति या परिवार कोरोना से बचेगा तो वो आपका धन्यवाद तो करेगा ही आपकी संस्था से भी जुड़ेगा और आपके कामों में भागीदार भी बनेगा जो आगे चल कर आपके अभियान को बल देगा। आप न तो धोखा कर रहे हैं न झूठ बोल रहे है अपितु यज्ञकर्ता व्यक्ति व परिवार को स्वस्थ कर इसकी उपयोगिता सिद्ध कर रहे हैं और उसके हजारों रुपए के चिकित्सा व्यय से उसको बचा रहे हैं। इन लाइनों का लेखक खुद चिकित्सक है। हमने देखा कई गरीब परिवार तो इस इलाज में बर्बाद ही हो जाते हैं। उनके लिए तो आप देवदूत बनकर आए हो और वो गरीब हवन करेगा तो सरकारी दवा से ही बच जाएगा, परिवार तबाह नहीं होगा। हाँ हम यह भी ध्यान दे कि जो घी सामग्री का खर्च भी वहन नहीं कर सकता तो हम आर्यसमाज से, जनसहयोग से इसकी व्यवस्था करे।

यह वक्त है कि हम सेवा व प्रचार दोनों कर सकते हैं तथा कोरोना वाइरस को हरा देश की बड़ी सेवा कर सकते हैं। यज्ञ जहाँ वाइरस को मारेगा वही वातावरण में ओक्सीजन भी बढ़ाएगा जो रोगी के लिए मददगार होगी। यज्ञ में हवन सामग्री के लिए स्वामीजी ने लिखा हैं पौष्टिक, औषधि, सूखे मेवे, सुगन्धित पदार्थ आदि डाले जाये ताकि पर्यावरण शुद्ध हो और रोग निवारक भी।

यज्ञधूम से बैक्टीरीया नाश पर स्वामी कृष्णानन्द जी चिकित्सक व वैज्ञानिको के साथ मिल मेडिकल कॉलेज अजमेर में सफल वैज्ञानिक प्रयोग कर चुके हैं जिसे सरकार ने भी माना है पर पता नहीं क्यों आर्य सभाएँ इन प्रयोगों को प्रचारित प्रसारित नहीं कर पाती। अन्यथा ये प्रयोग वेदज्ञान की उपयोगिता स्थापित कर पाते और विश्व पुनः वेदों की ओर आता। हम कहते तो Back to the vedas पर करते कुछ नहीं। यह अवसर है वेद की, आर्यसमाज की उपयोगिता सिद्ध करने का, आर्यसमाज की ग्राह्यता बढ़ाने का। अगर हम ऐसा कर पाए तो यह विश्व कल्याण का काम हैं और स्वामीजी के अनुसार संसार का उपकार करने का काम है। अविद्या, अन्धकार, धर्म के नाम पर रोज बढ़ रहे आडम्बर को मिटाने का काम

है।

यज्ञ किसी भी मतावलम्बी, जो करेगा या पास बैठेगा उसके लिए लाभकारी है। जाति, सम्प्रदाय, प्रान्त या देश से कोई लेना देना नहीं सब के लिए हितकारी है, प्राणवायु दाता है। सौभाग्य की बात है कि इस समय योग गुरु बाबा रामदेव जी यज्ञ की उपयोगिता व यज्ञ से चिकित्सा पर बड़े पैमाने पर काम कर रहे हैं प्रभु उन्हें सफलता दे ताकि विश्व का कल्याण हो सके।

इसी प्रकार ब्रह्मयज्ञ यानी संध्या हमें शारीरिक,। मानसिक स्वास्थ्य देती हैं। संध्या में स्वामीजी ने प्राणायाम के लिए भी कहा है जिससे हमारे फेफड़े तो मजबूत होंगे ही प्राणवायु के अतिरिक्त संचार से शरीर के सभी अंग, सभी कोशिका व मस्तिष्क भी बलवान् होगा और हम अदीन होकर सौ वर्ष पर्यन्त स्वस्थ व खुशहाल जीवन बिताएँगे और हमारा देश स्वस्थ होगा, सुखी होगा और 'हम विश्व को कोरोना मुक्त करने में महती भूमिका निभाएँगे।'

तो आइए हम आज से ही इस कोरोना लॉकडाउन का उपयोग करे और जनहित में यज्ञ और संध्या का प्रचार प्रसार करे जो सर्वहितकारी है, चाहे कोई भी देश हो कोई भी जाति, मत या सम्प्रदाय हो। ऐसे सार्वदेशिक सर्वहितकारी काम को कोई क्यों नहीं अपनाएगा? आवश्यकता सिर्फ यह हैं कि हम समाज से बाहर अपनी गली, गाँव,शहर में निकले। विश्वास है कि पाठक विचारेंगे और लगे उपयोगी है, हितकारी है तो गुरुवर दयानन्द की बात मानेंगे और क्रियान्वित करेंगे। 'वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना हमारा परम धर्म है'

गुणग्राहक निज दृष्टि को, यदि सब लेंय बनाय ।
तो इस दुनियां का सहज, तख्त पलट हो जाय।।
तख्त पलट हो जाय, दोष पर गुण छा जाए ।
दुख पर सुख छा जाय, बुरा भी भला कहाए ।।
कह 'अनंग' करजोरि, लगे अच्छा जग बेशक।
सिर्फ बदलकर दृष्टि, खुदहिं करलो गुणग्राहक।।

–✍ अनंग पाल सिंह 'अनंग'

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कंप्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

झांसी की अधीश्वरी वीरांगना लक्ष्मीबाई

— ✍ प्रियांशु सेठ

स्वराज्य की रक्षा में अपना सर्वस्व निछावर कर देने वाली महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन की स्मृतियों का स्मरण कर प्रत्येक देशप्रेमी का मन पुलकित हो उठता है। उनकी जीवनी से हम इस बात की प्रेरणा ग्रहण करते हैं कि यदि स्वराज्य पर कभी आंच आये या उसका गौरव संकट में हो, तो हम अपना सर्वस्वार्पण करके उसकी रक्षा करें। महारानी लक्ष्मीबाई भारतीय इतिहास में उस वीरता और विश्वास की पहचान है, जिनका चरित्र पवित्रता और आत्मोत्सर्ग के पुण्यशील विचारों पर अवलम्बित हैं। उन्होंने निर्भयतापूर्वक राज्य का रथ चलाया और युद्ध क्रान्ति के क्षेत्र में उतरकर यह भी सिद्ध किया कि स्वराज्य के गौरव को बचाना केवल पुरुषों का ही नहीं अपितु स्त्रियों का भी कर्त्तव्य है। मृत्यु के समय उनकी अवस्था २२ वर्ष ७ महीने और २७ दिन की थी। यह अवस्था ऐसी है, जिसमें वह देश की आजादी, उसे स्वतन्त्र कराने और उसके लिए मर–मिटने की भावना से परे हटकर अपने सुख, ऐश्वर्य और मनोविनोद को प्रधानता देकर आराम से अपना जीवनयापन कर सकती थीं। लेकिन उस महान् साम्राज्ञी के सामने देश का वह मानचित्र और वे परिस्थितियाँ थीं, जिनमें भारतीयों को 'नेटिव' कहकर उनके साथ पशुत्वपूर्ण व्यवहार किया जाता था, उनकी धार्मिक भावनाओं को कुचला जाता था, उन्हें बौद्धिक तथा शारीरिक रूप में हीन व पंगु बनाकर निष्क्रिय और निस्तेज बना दिया जाता था।

वामपंथी इतिहाकारों के अभिमतानुसार सन् १८५७ की जनक्रान्ति अपने–अपने स्वार्थों की रक्षा का परिणाम था और कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों का तत्कालीन शासन के विरुद्ध षड्यन्त्र था। जबकि यदि ऐसा होता तो यह क्रान्ति देशव्यापी न होकर केवल कुछ क्षेत्रों एवं कुछ रियासतों तक ही सीमित रह जाती। लेकिन १८५७ की जनक्रान्ति में जनता अपनी शक्ति के बल पर मिटने को तैयार हुई और अपनी अखण्ड एकता तथा बल–पौरुष का परिचय अंग्रेजो को दिया। जहाँ जनता के लिए स्वाभिमान और स्वत्वों का प्रश्न था, वैसा ही उस समय के रजवाड़ों और पूर्व शासकों के सामने भी यही एक भाव था कि उनके साथ मानवीय व्यवहार किया जाए व शासक होने के नाते उनके अधिकारों के प्रति आँखें न मींच ली जाएं।

महारानी लक्ष्मीबाई युद्धशिक्षा में पारंगत, मन से दृढ़ और कर्म से तेजस्वी क्षत्रिया थीं। उनका जन्म काशी के अस्सीघाट मोहल्ले में २१ अक्टूबर, १८३५ को मोरोपंत तांबे के घर हुआ। आरम्भ से ही लक्ष्मीबाई को ऐसा वातावरण मिला, जिसने उन्हें स्वराज्य के प्रति निष्ठावान और उसकी स्वतन्त्रता के लिए निरत होने का लगन लगा दिया। अपने पति राजा गंगाधरराव के जीवनकाल में ही वह अपनी बुद्धिमत्ता और शासकीय क्षमता का परिचय देती रहती थीं। झांसी राज्य का शासनतन्त्र अंग्रेजों के इशारों पर चल रहा है, यह बात उन्हें जरा भी नहीं भाई। लेकिन उस समय शासनतन्त्र के सम्पर्क में न होने के कारण वह अपनी भावना को पी गईं। उसी समय लार्ड डलहौजी ने समस्त देशी रियासतों को अंग्रेजी शासन में मिलाने का एक षड्यन्त्र रचा। पुत्र गोद लेने की प्रचलित प्रथा को भी समाप्त कर दिया। उन्हीं दिनों राजा गंगाधर राव बीमार पड़े। उन्होंने झांसी के उस समय के अंग्रेजी प्रबन्धक श्री एलिस को बुलाकर उनके सामने ही एक लड़का गोद लिया तथा श्री एलिस ने शपथबद्ध होकर कहा कि वह रानी और गोद लिए हुए बच्चे पर कभी अंग्रेजी हुकूमत की टेढ़ी दृष्टि नहीं पड़ने देंगे। लेकिन गंगाधर की मृत्यु के पश्चात् एलिस का यह वचन पानी के बुदबुदे की तरह समाप्त हो गया। एलिस ने रानी को दरबार में जाकर सरकारी फरमान सुनाया कि रानी का दत्तक पुत्र अस्वीकार किया गया और वह पांच हजार रुपये माहवार की पेंशन लेकर झांसी अंग्रेजों को सौंप दे। अंग्रेजों द्वारा यह अपमान और विश्वासघात महारानी के शरीर में विष की तरह बिंध गई। उन्होंने गरजकर कहा– ''मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी।''

महारानी की इस घोषणा में उस युग का प्रतिनिधित्व था, जिसमें अन्याय के जाल को बराबर अंग्रेजों द्वारा

फैलाया जाता था और जिसके नीचे सर्व साधारण सिसक उठा था। बचपन के संस्कार ने रानी के मन में प्रेरणा दी और उन्होंने शासन की कमान को अपने हाथों में ले लिया। झांसी में जनता द्वारा अंग्रेजों का कत्लेआम आरम्भ हो गया। हो सकता था कि यदि महारानी का जरा–सा भी संकेत जनता को मिल जाता तो अंग्रेज लोग मौत के घाट उतार दिए जाते। लेकिन महारानी का संघर्ष, उसका विद्रोह और उसका पराक्रम अन्याय के विरुद्ध था। शासन को अपने हाथ में लेने के बाद उन्होंने युद्ध की पूरी योजना तैयार की। उन्होंने दो बातों पर विशेष जोर दिया। एक तो यह कि सेना अनुशासित रहे, और दूसरा यह कि जनता को न्यायपूर्ण हक मिले। एक स्त्री के हाथ में राज्य की शासनसत्ता देखकर आसपास के रजवाड़ों ने एक मजाक–सा समझा। ओरछा के दीवान नत्थेखा ने ३० हजार का सैन्यबल लेकर झांसी पर हमला कर दिया, लेकिन रानी की तोपों ने उनका भुरकस निकाल दिया। दीवान साहब को जिन्दगी के लाले पड़ गए। अपना सारा गोलाबारूद छोड़कर उन्हें भागना पड़ा। राज्य में उस समय चोर–डाकुओं का भी बड़ा जोर था। महारानी ने साहस का परिचय देते हुए उन परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाया। इस तरह एक निश्चिन्तता और सुरक्षा का भाव झांसी की जनता के मन में बना और वह महारानी के प्रति विश्वास और भावनामयी अवस्था के साथ देखने लगी।

अंग्रेजों ने इस जनक्रान्ति को गदर कहा और उसे मिटाने के लिए तत्पर हो गए। सर ह्यूरोज, भोपाल और हैदराबाद की मदद लेकर महारानी पर चढ़ दौड़ा। २३ मार्च १८५८ को सर ह्यूरोज ने झांसी पर आक्रमण किया। महारानी ने नीतिपूर्वक अन्न और फसल कटवा दिए थे जिससे कि विरोधियों को अन्न और छाया न मिल सके। लेकिन ग्वालियर से अंग्रेजी सेना को सहायता मिली और ३१ तारीख को झांसी की सैन्यशक्ति क्षीण पड़ने लगी। अपने ही लोगों ने उन्हें धोखा दिया। महारानी ने समझ लिया कि झांसी खाली करनी होगी। वह अपने दत्तक पुत्र को पीठ पर बांधकर कालपी की ओर भाग निकली। अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। लेफ्टिनेंट बोकर रानी के बहुत पास तक पहुंच गया था। उसी समय रानी ने एक भरपूर हाथ तलवार का बोकर पर मारा और वह भूलुंठित हो गया। कालपी में राव साहब पेशवा की सेना में बड़ी अँधेरगर्दी थी। सैनिक अनुशासन का नाम नहीं था। महारानी ने सारी व्यवस्था की। सर ह्यूरोज झांसी से कालपी पर टूट पड़ा। महारानी ने अद्‌भुत प्रतिभा और रण–कौशल का परिचय दिया। लेकिन राव साहब की सेना में आत्मिक बल नहीं था और कालपी अंग्रेजों के सर कर दिया। महारानी और राव साहब अपने विश्वस्त साथियों सहित ग्वालियर की ओर दौड़ पड़े। महारानी ग्वालियर आईं और उन्होंने वहाँ की जनता को एकसूत्र में बांधा। उन्हें जनता तथा ग्वालियर की सेना का पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ। ग्वालियर का किला महारानी के हाथों में था, लेकिन पेशवा के सैनिक आमोद–प्रमोद की बातें सोचते थे।

राव साहब पेशवा के राज्याभिषेक की बात दोहराई गई, लेकिन रानी तटस्थ रहीं। वह अच्छी तरह से जानती थीं कि अंग्रेज चैन से नहीं बैठने देंगे। वही हुआ भी। ११ जून १८५८ को जनरल रोज की सेनाओं से महारानी की मुठभेड़ हुई, लेकिन वह दिन अनिर्णीत होने के कारण १८ जून को पौ फटते ही लड़ाई शुरू हो गई। महारानी ने रोज की सेना पर दबाव डाला और अन्तिम समय तक अदम्य साहस के साथ अंग्रेजों की विशाल सेना को युद्धभूमि में धूल चटाती रहीं। लेकिन एक गोरे की पिस्तौल की गोली महारानी की जांघ में लगी। रानी ने पास आये हुए अंग्रेजों के तलवार से टुकड़े किये। महारानी ने भरसक यत्न किया कि वह सामने आए हुए नाले को पार कर जाए, लेकिन घोड़ा सहमा और बिदक गया। अंग्रेजों का दबाव बढ़ रहा था। एक और अंग्रेज सामने आया। वह भी महारानी की तलवार से मारा गया। महारानी क्षीण पड़ चलीं और घोड़े से गिर पड़ीं। उनके साथी उन्हें निकटवर्ती बाबा गंगादास की कुटी में ले गए लेकिन उन्होंने स्वराज्य की रक्षा में अपने प्राण त्याग दिए।

प्रत्येक वर्ष १८ जून को हम महारानी लक्ष्मीबाई की पुण्यतिथि मनाते हैं। महारानी आज न होते हुए भी प्रत्येक देशप्रेमियों के हृदय में निर्भीकता और कर्त्तव्यपरायणता की प्रेरणास्त्रोत बनकर प्रतिष्ठित हैं। वह एक अमरगाथा हैं जिसे आजादी के दीवानों ने आज तक गाया और भविष्य में भी गायेंगे।

शब्दों की गरिमा

– ✍ प्रेमकुमार मणि

मेरे एक शिक्षक ने हाई स्कूल में ही बताया था कि शब्द ब्रह्म है। उनका दुरुपयोग पाप या अपराध है। सम्भवतः यह भारतीय काव्यशास्त्र की मान्यता है, जिसका वह हवाला भी देते थे। मनु की स्मृति अक्षर को ब्रह्म स्वीकारती है। उसके अनुसार 'एकाक्षरं परम ब्रह्म' (2/83) है। अक्षर और शब्द में वही सम्बन्ध है ,जो परमाणु और अणु में है। ॐ अक्षर भी है, शब्द भी। नैयायिक भी शब्द को प्रमाण मानते हैं। शब्द की गरिमा, न केवल हमारे देश –समाज में, बल्कि पूरी दुनिया में स्वीकार की गई है। क्रान्तिधर्मी लेखक – विचारक ज्यां पाल सार्त्रे ने अपनी आत्मकथा का नाम ''शब्द'' (The Words) यूँ ही नहीं रखा था।

लेकिन शब्द के पूर्व अन्न का महात्म्य मेरे जहन में था। मैं किसान परिवार से आता हूँ। दादा जी से सुना था कि अन्न ब्रह्म है। इनका दुरुपयोग पाप है। हमारे पारम्परिक घरों में किचेन को रसोई घर कहते थे। हम मगधवासियों के बीच उसे चुल्हानी कहने का प्रचलन था। हम लोग वहीं बैठ कर भोजन करते थे। ध्यान रहता था कि जूठन नहीं गिरे। बच्चों के लिए थोड़ी छूट होती थी। यानि उन्हें एक सीमा तक उसे बर्बाद करने पर मुआफी थी। किसान अन्न उपजाते थे। अन्न में उनकी मेहनत, साधना, सब्र आदि निहित होता था। उसका मोल, उसकी गरिमा वह समझते थे। वह उसे यदि ब्रह्म का दर्जा देते थे, तब यह स्वाभाविक था। हालांकि अन्न पदार्थ है, और ब्रह्म का अर्थ चेतन से है। पदार्थ और चेतन का यह युत अद्भुत है। हमारे वेदान्तिक तो ब्रह्म को सत्य और जगत् यानि पदार्थ को मिथ्या मानते हैं। यहाँ दादाजी की किसान चेतना पदार्थ (अन्न) को ही ब्रह्म बता रही थी।

आरम्भ में शब्द को ब्रह्म रूप में जान कर मुझे थोड़ा कौतूहल हुआ था। अन्न भी ब्रह्म, शब्द भी ब्रह्म! तो क्या ब्रह्म कई हैं ? यह बहुवचन है ? कितने ब्रह्म हैं ? उस किशोरवय में ऐसे अटपटे प्रश्न उभरने स्वाभाविक थे। लेकिन यह एक अलग प्रसंग है। यहाँ प्रासंगिक है तो यह कि अन्न और शब्द का दुरुपयोग पाप है।

ऐसा नहीं कि शब्दों के दुरुपयोग मुझ से नहीं होते हैं। लेकिन बचने की कोशिश जरूर होती है। यदि गलती मेरी समझ का ही हिस्सा है, तब भला उसे कैसे रोक सकता हूँ। लेकिन भरसक प्रयत्न करता हूँ कि सही शब्दों का सही जगह प्रयोग हो। मनुष्य हूँ तो गलतियाँ, पाप और अनजाने अपराध होने सम्भव हैं। लेकिन बचने और सुधरने की निरंतर कोशिश का नहीं होना अपराध कहा जाएगा।

शब्दों की गरिमा समझे बिना हम अपनी भाषा का सौष्ठव रूप नहीं दे सकते। इसलिए यह आवश्यक है कि हम उनके महत्व को समझें। एक–एक अक्षर और शब्द के अर्थ को हमें गहराई से समझना चाहिए। किसी लेखक, भूल नहीं रहा हूँ तो जी बी शॉ, के बारे में सुना था कि उन्होंने सुबह से दोपहर तक अपने लिखे में एक अर्द्धविराम जोड़ा और दोपहर से शाम तक उसी लेख पर काम करते हुए उसे हटा लिया। यह एक लेखक की दिनचर्या होती है। एक–एक शब्द, एक–एक विराम–विधान पर इसी तल्लीनता से उसे जुड़ना होता है। सच यह भी है कि कम से कम मेरे लिए इसे पूरा करना हमेशा असम्भव होता है। लेकिन चिंता बेहतर करने की अवश्य होती है।

भाषा हमारे व्यक्तित्व, चरित्र और सोच को प्रकट करती है। इसे कम ही लोगों ने अनुभव किया है कि भाषा के स्तर पर भी न्याय का एक संघर्ष हमें करना होता है। भाषा की भी हिंसा होती है। हमारे संचित संस्कार प्रायः हमारी भाषा में उझक रहे होते हैं। हमने कभी यह सोचा है कि जब हम काले कानून और बाजार की बात करते हैं तब एक गोरी नैतिकता के कितने गुलाम होते हैं ? शुक्ल वर्ण का एक पाखण्ड हमारे अवचेतन पर हावी होता है। वह हमारी चेतना और सरोकारों का नियामक बन जाता है। अँधा कानून और लूली – लंगड़ी या बौनी राजनीति कहते समय हम दिव्यांगों की भावनाओं का कोई ख्याल नहीं करते।

कवि धूमिल ने 'जिसकी भी पूंछ उठाई उसे मादा ही पाया' लिखते समय स्त्रियों की अस्मिता की कोई चिंता नहीं की। मानो मादा होना कोई अपराध हो। यह सब वह तब लिख रहे थे जब मुल्क में इंदिरा गाँधी प्रधानमंत्री थीं। भाषा में वर्चस्व का खेल अपनी ही तरह से चुपचाप चलता है। हम इन सब पर कभी ध्यान ही नहीं देते।

कभी–कभार शब्दों के साथ बलात्कार भी होते हैं। खिलवाड़ तो होते ही रहते हैं। शब्दों से खिलवाड़ जब भी देखता हूँ, पीड़ा होती है। जब विधान परिषद् का सदस्य था एक बार एक नये विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में विधेयक आया। विश्वविद्यालय का नाम ज्ञान विश्वविद्यालय था। दो सदस्यों, जिनमें एक मैं भी था, ने एतराज जताया कि यह ज्ञान विश्वविद्यालय क्या होगा। विश्वविद्यालय में तो ज्ञान– भाव अन्तर्निहित ही है। क्या दूसरे विश्वविद्यालय ज्ञान से रहित हैं ? यह तो पढाई का स्कूल या चिकित्सा का अस्पताल जैसी फिजूल– सी बात हुई। लेकिन हमारी नहीं मानी गई। विधेयक चूकि स्वयं मुख्यमंत्री ने रखा था, अतएव मेज थपथपा कर पास कर दिया गया। बिहार में आज भी वह ज्ञान विश्वविद्यालय है।

धारासभाओं में संसदीय नैतिकता का शाइनबोर्ड लगाकर भाषा का एक अलग मिथ्याचार सृजित होता है। आप किसी सदस्य को यह नहीं कह सकते कि आप झूठ बोल रहे हैं, लेकिन यह कह सकते हैं कि आप असत्य बोल रहे हैं। इसे पाखण्ड के सिवा और क्या कहा जा सकता है। शब्दों का आडम्बर जीवन के कई क्षेत्रों में आप देख सकते हैं।

कुछ ऐसे शब्द हैं, जिन्हें धड़ल्ले से आम –जीवन में चलते देखता हूँ, इन शब्दों के दुरुपयोग से पीड़ा का एहसास होता है। एक शब्द है स्वर्गीय। इसे हर दिवंगत व्यक्ति के साथ लगा दिया जाता है। व्यक्ति चोर, अपराधी, बलात्कारी, हत्यारा कुछ भी हो स्वर्गीय बता दिया जाता है। स्वर्ग है या नहीं, यह एक अलग प्रसंग है। जो है मान कर लिखते – बोलते हैं, वह भी किस आधार पर कहते हैं कि अमुक व्यक्ति स्वर्गीय हुए। कुछ नरकीय लोगों के उदाहरण भी तो होने चाहिए थे। यूँ ही कुछ लोग ईश्वर से सिफारिश और कुछ तो आदेश देने लगते हैं कि ईश्वर अमुक की सद्गति सुनिश्चित करें। आस्तिक नैतिकता में ही यह सब कितना अनैतिक प्रतीत होता है, इसके प्रयोगकर्त्ता कभी समझ नहीं पाते।

श्रद्धांजलि शब्द श्रद्धा और अंजलि से मिल कर बना है और जब हम किसी के लिए इसका प्रयोग करते हैं, तब उसके प्रति हमारी अंजलिबद्ध श्रद्धा का भाव आता है। श्रद्धा का मतलब होता है आस्था, निष्ठा और सम्मान। लेकिन कुछ लोग इसे बलात हासिल करना चाहते हैं। आमंत्रण देकर, भोज का लालच देकर लोगों की भीड़ जुटाई जाती है। अखबारों में रोज श्रद्धांजलियों की खबरें होती हैं। किस–किस ने श्रद्धांजलि दी और किस–किस ने नहीं दी इसकी खोज–खबर ली जाती है। यह सब मिलकर एक सामाजिक मिथ्याचार बन गया है। ऐसे मिथ्याचारों का समाज में लगातार विस्तार हो रहा है। बेचारे शब्द, जो हमारे गुरू और भारतीय काव्यशास्त्र की नजरों में ब्रह्मस्वरूप हैं, की मर्यादा तार –तार होती है। हमें केवल वैयाकरणिक धरातल पर ही नहीं, नैतिक धरातल पर भी शब्दों के गलत प्रयोग से परहेज करने चाहिए। इससे समाज का पर्यावरण ठीक रहेगा। सामाजिक मिथ्याचार यूँ ही समृद्धवेग से बढ़ रहा है। हमने यदि इसकी रोकथाम नहीं की, तो कुछ शब्द अपना वास्तविक अर्थ खो देंगे। जब शब्द अपने अर्थ खोने लगें, तब उसे सांस्कृतिक अकाल ही कहा जाएगा। कहना नहीं होगा, ऐसा समय भयावह होगा।

हे मनुष्य लोगो! तुम अनादि अर्थात् उत्पत्तिरहित, सत्यस्वरूप, ज्ञानमय, आनन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, स्वप्रकाश, सबको धारण और सबके उत्पादक, देश–काल और वस्तुओं के परिच्छेद से रहित और सर्वत्र व्यापक परमेश्वर में नित्य व्याप्य–व्यापक सम्बन्ध से जो अनादि, नित्य, चेतन, अल्प, एकदेशस्थ और अल्पज्ञ है, वही जीव है, ऐसा निश्चित जानो।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

विकास और पर्यावरण : एक दूसरे के पूरक या विपरीत

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

वैज्ञानिकों के मुताबिक यदि इन्सान को धरती पर सहजता से जिन्दगी बसर करनी है तो ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 80 प्रतिशत तक की कमी लानी होगी । अब सवाल यह है कि इस चेतावनी पर अमल करने की जिम्मेदारी पूरी दुनिया के देशों को है या किसी एक दो देश को ? जाहिर है दुनिया के सभी देशों को ग्रीन हाउस गैसों के असर को कम करने की जिम्मेदारी है। और यह भी सही है कि इस जिम्मेदारी का पालन दुनिया के देश ईमानदारी से नहीं कर रहे हैं। इसकी खास वजहें हैं। इनमें कुछ तो ऐसी हैं जिसे आम आदमी की लापरवाही का नतीजा हैं। विकास का जो मॉडल दुनिया के देशों ने अपनाया है उससे ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से बचा नही जा सकता है। वातावरण में विषैली गैसों के उत्सर्जन से भी नहीं बचा जा सकता है। ध्वनि, जल और मृद्दा प्रदूषण से भी बचना नामुमकिन है। ऐसे में खराब होते पर्यावरण को रोक पाना असम्भव होता जा रहा है।

दूसरी समस्या जो दिखाई पड़ती है वह है धरती पर मौजूद संसाधनों का। मौजूदादौर में दुनिया का हर इन्सान धरती पर उपलब्ध संसाधनों का बेतहांसा दोहन करने में लगा हुआ है। क्योंकि विकास के इस नए मॉडल में स्थानीय संसाधनों का दोहन किए बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। लेकिन इस बेतहांसा दोहन से पर्यावरण पर क्या असर पड़ेगा इस पर कोई गौर नहीं करता है। सबसे ताज्जुब की बात यह है कि वैज्ञानिकों की चिन्ताओं को विश्व के देशों की तकरीबन सभी सरकारें सिरे से खारिज करती आ रही हैं। जब कि जलवायु परिवर्तन, ग्लोबन वार्मिंग की घटनाएं प्रारम्भ हो गईं हैं। अमेरिका सहित तमाम देशों में पिछले साल जो भंयकर प्राकृतिक ताण्डव देखने को मिला था, वह इसी को संकेत करता है। शायद किसी और भयंकर विनाश का इंतजार किया जा रहा है ?

पर्यावरण पर अपना मत रखते हुए वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंस के यह वाक्य – 'इंसान को अपने अस्तित्व की हिफाजत करने के लिए किसी और ग्रह पर बसेरा बनाने के लिए सोचना चाहिए।' जाहिर है उनका संकेत खराब होते पर्यावरण और आने वाले खतरों की ओर निश्चित रूप से है। वैज्ञानिकों के मुताबिक पर्यावरण का 60 फीसदी हिस्सा बेहद खराब स्थिति में है । यह सब ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में दिन–ब–दिन हो रही वृद्धि का नतीजा है। विकसित देश प्रदूषित पर्यावरण से होने वाले नुकसान की जिम्मेदारी विकासशील देशों पर डालकर अपनी जिम्मेदारियों से बचते रहते हैं। इसका नतीजा यह हो रहा है कि पूरी दुनिया का पर्यावरण इतना खराब होता जा रहा है कि इंसान को सेहतमंद होकर जीना एक स्वप्न जैसा होता जा रहा है।

वैज्ञानिक व पोलियोंटोलॉजिस्ट पीटर वार्ड के रिसर्च रिपोर्ट में कहा गया कि यदि वातावरण में विषैली गैसों को छोड़ने और आक्सीजन को कम करने का सिलसिला इसी तरह जारी रहा तो आने वाले वक्त में 90 फीसदी जीवन का अंत हो सकता है। जिस तरह से तकरीबन 25 करोड़ साल पहले पेरमियन युग में एक साथ धरती की सभी प्रजातियों का हो गया था। शोध से यह बात स्पष्ट हुई कि ग्लोबल वार्मिंग की जो स्थितियां 25 करोड़ साल पहले निर्मित हुई थी, कुछ ऐसी ही स्थितियां नए विकास के मॉडल अपनाने के बाद निर्मित हो रहीं हैं। इसी तरह की रिपोर्ट युनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया के शोधकर्ताओं के शोध के बाद कुछ साल पहले आई थी। वैज्ञानिकों का मानना है कि जैसे–जैसे धरती का ताप बढ़ेगा, वैसे–वैसे ग्लेशियर पिघलने की गति भी बढ़ेगी और जलवायु में असंतुलन पैदा होगा। इससे न समय पर बरसात होगी, न ठण्ड पड़ेगी और न गर्मी ही। मतलब सब कुछ गड़डमगड़ड हो जाएगा। पिछले कुछ सालों में ग्रीन लैंड ग्लेशियर का टूटना जारी है। वैज्ञानिकों के मुताबिक आइसबर्ग टूटकर अटलांटिक सागर में गिर रहें हैं। हिमालय के ग्लेशियर भी पिघलने लगे हैं यानी खतरे की घंटी बज चुकी है और हम सो रहे हैं। जाहिरतौर विकास का यह नया मॉडल मानव अस्तित्व को ही समाप्त करने का पार्ट अदा कर रहा है। ऐसे में पूरी दुनिया के सामने यह सवाल खड़ा होगा है कि क्या हम अपने अस्तित्व को मिटाने के लिए विनाशकारी इस विकास

के मॉडल पर आगे बढ़ते रहेंगे, या गांधी के अरिग्रह के सिद्धांत को अपनाएंगे, जिसमें संतुलित विकास की बात कही गई है। जो विकास के साथ–साथ पर्यावरण रक्षा की भी गारंटी देता है।

भारत सहित पूरे विश्व में वनोन्मूलन, औद्योगीकरण, खनन, विशालकाय बांध बनाने, उजाड़ और कचरा–निर्माण का दौर चल रहा है । सभी देश इन विनाशकारी तरीकों से विकास की दौड़ में सबसे आगे निकल जाना चाहते हैं । जाहिर है इनमें वे देश भी शामिल हो गए हैं, जिन देशों में कुछ साल पहले तक यह कह कर विरोध हो रहा था–इससे प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन होगा और इससे तमाम समस्याएं खड़ी हो जाएंगी। स्वाभाविक है यदि पडोसी सभी सुख–सुविधाओं से लेस हो और आए दिन अपनी सम्पन्नता का रोब गाठता हो तो आप कितने दिन अनदेखा कर पाएंगे । यही हो रहा है। विशालकाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बूते सारी दुनिया में एक 'अनलिमिटेड कम्पटीशन' शुरू किया जा चुका है, जो लोगों को यह सब्जबाग दिखा रहा है–आने वाला कल तुम्हारा है। बस करना इतना है तुम भी इस तथाकथित विकास के नए दौर में शामिल हो जाओ।' और इस आमंत्रण को लोग चुनौती मान वह सब कुछ कर रहें हैं जिसे करने की कभी कल्पना तक नहीं की थी। और इस विकास में वही 'वीर' गिना जा रहा है जो पर्यावरण का अधिक से अधिक विनाश कर सके ।

विश्व के वैज्ञानिकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि कैसे विश्व की सरकारों को यह समझाया जाए कि अंधाधुंध विकास और प्राकृतिक संसाधनों का मनमाना दोहन पर्यावरण के लिए बेहद विनाशकारी है, जिससे मानव अस्तित्व के लिए ही खतरा बन सकता है। जाहिरतौर पर वैज्ञानिक इस पर खुद को असहाय महसूस कर रहें हैं , क्यों कि कोई भी देश इस नए विनाशकारी मॉडल को छोड़ने के लिए तैयार नही हैं। सुप्रीम कोर्ट ने 1991 में आदेश दिया था कि लोगों को खासकर नई पीढ़ी को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने के लिए राज्य सरकारों को पाठ्यक्रम में नया विषय जोड़ना चाहिए। लेकिन इस पर कितना अमल हुआ सभी जानते हैं । कोर्ट ने पर्यावरण की रक्षा के लिए राज्य सरकारों को स्पष्ट आदेश दिया था कि जन जागरण के द्वारा लोगों में नई चेतना जगाई जाए। लेकिन सुप्रीम कोर्ट के आदेश से न तो राज्य सरकारें जगीं, फिर जनता को जागने का मतलब ही कहां होता है । इस तरह पर्यावरण को खराब करने में न तो बड़ी–बड़ी देशी–विदेशी कम्पनियां पीछे हैं और न ही आम जनता ही।

विशेषज्ञों का मानना है पर्यावरण के लिए खतरा बढ़ते शहरीकरण से ज्यादा है । जाहिर है भारत सहित दुनिया के तमाम देशों में शहरीकरण यानी औद्योगिकीकरण बढ़ रहा है । गांव के गांव उजड़ रहें हैं । लोग रोजगार और सुख–सुविधाओं के तलाश और लालच में गांव छोड़कर शहर आ रहे हैं। लेकिन जो नई बस्तियां बसाई जा रहीं हैं, उनका न पर्यावरण के मानक पालन की कोई जिम्मेदारी दी जा रही है, और न ही यह बताया जा रहा है कि किस तरह से वे पर्यावरण की रक्षा करने में सहयोगी बन सकते हैं । सारा जनतंत्र एक तरफ और पर्यावरण की हिफाजत एक तरफ । ऐसे में पर्यावरण की रक्षा कैसे हो, यह एक सामयिक और बड़ा प्रश्न है । हां, इतना जरूर हो रहा है पर्यावरण के नाम नाम पर अरबों रुपये पानी की तरह बहाए जा रहा है। फाइलें मेनटेन की जा रहीं हैं। शासन और लालफीताशाही दोनों पर्यावरण के नाम पर चांदी काट रहे हैं और पर्यावरण लगातार विनाश की तरफ बढ़ता जा रहा है । जो संस्थाएं या पर्यावरणवादी पर्यावरण के संरक्षण की बात कर रहे हैं, उन्हें विकास विरोधी बताकर हताश किया जा रहा है । सरकार झूठा प्रचार यह भी करती है कि जो लोग पर्यावरण की रक्षा की बात करते हैं, वे विकास के विरोधी हैं और देश से गरीबी मिटने देना नही चाहते ।

दरअसल विकसित देश पर्यावरण को सबसे अधिक नुकसान पहुंचा रहे हैं । उन्हें यह कतई चिन्ता नहीं है कि आने वाली पीढ़ियों के लिए उनका धरती के संसाधनों का बेतहांसा दोहन बहुत बड़ा खतरा बन सकता है । इस लिए वे विकास के उस मॉडल के पैरोकार बने हुए हैं जो पर्यावरण के साथ–साथ संस्कृति, धर्म और मानवता का सर्वनाश कर रहा है । विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियां पूरे समाज को एक बाजार में तबदील करती जा रहीं हैं, इसका असर यह हो रहा है कि हर व्यक्ति धरती की हिफाजत के बजाय, उसको उजाड़ने में लगा हुआ है। इन्सान से लेकर संस्कृति, पर्व, धर्म और चिकित्सा यानी सब कुछ एक बाजार में तबदील हो चुका है। यह बाजार माल में तबदील हो गया है। यानी चारों तरफ लुटमलूट मची हुई है। इस

लूट में निर्माण और अपरिग्रह का सूत्र दूर–दूर तक दिखाई नहीं देता है। यानी समाज का हर छोटा–बड़ा तबका इस तथाकथित विकास की दौड़ में शामिल हो चुका है। लेंकिन किसी को पर्यावरण की रक्षा की तरफ ध्यान नहीं है। जिन्हें पर्यावरण की तरफ ध्यान है और इस तथाकथित विकास के विरोधी हैं, उन्हें विकास विरोधी या गरीब विरोधी बता का किनारे लगाने की मुहिम चलाई जा रही है। ऐसे में सोचा जा सकता है कि आने वाला समय बेहतर पर्यावरण के लिहाज से कितना निरापद होगा ? पर्यावरणीय मापदण्डों और विकास के मानकों को संतुलित करने की बहुत जरूरत है । बिना संतुलन बनाए और इस दिशा में जनजागृति फैलाए न तो हम आने वाले तमाम खतरों से बच पाएंगे और न ही निरापद विकास ही कर पाएंगे । दिल्ली, हरयाणा और राजस्थान में धूम्रपान बहुत बड़ी तादाद में किया जाता है । इसकी वजह से ऐसे लोग भी श्वास और आंख की बीमारियों से बड़ी तादाद में शिकार हो रहे हैं जो इस लत से दूर हैं । धूम्रपान अशिक्षित स्त्री–पुरुष ही नहीं कर रहें, बल्कि पढ़े–लिखे लोग बहुत बड़ी तादाद में इस लत के आदी हैं। मतलब पर्यावरणीय जागरूकता न अनपढ़ों में है और न पढ़े–लिखों में ही। सबसे चिन्ता की बात यह है कि जो लोग इस दिशा में कुछ सार्थक कार्य–जागरूकता और शिक्षण का कर रहे हैं उन्हें प्रोत्साहन देने के बजाय उनको हतोत्साहित किया जाता है। इस लिए यह समस्या दिनोंदिन गम्भीर होती जा रही है ।

सरकार वर्षों से पर्यावरण सुधार की दिषा में संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ मिलकर कई तरह की, कई स्तरों पर कार्य कर रही है। अरबों रुपए अब तक इस मद में खर्च भी किए जा चुके हैं। लेकिन जन सहयोग न मिलने की वजह और पैसे का दुर्पयोग होने के कारण इस दिषा में ऐसा कुछ भी नहीं किया जा सका, जिससे 'जीवन को सुरक्षित' माना जा सकता। और हम आधुनिक भारत में स्वस्थ, निरोग और प्रगति के रास्ते पर बेखौफ होकर निरन्तर आगे बढ़ते जाते ।

भारत सहित पूरी दुनिया में विकास के नाम पर विस्थापन, उजाड़, और पर्यावरण विध्वंस का दौर चलाया जा रहा है । जो इस दौर में शामिल हैं, वे 'बुद्धिमान' और 'चतुर' माने जा रहे हैं और जो इस विनाश लीला की खिलाफत करते हुए आंदोलन के जरिए लोगों और सरकारों को जागरूक बना रहें हैं, जाहिरतौर पर पागल घोषित किए जा रहे हैं । मतलब एक तरफ बाजारवादी शक्तियां जिनके पास अकूत पैसा है, पर्यावरण का विनाश करने में लगीं हैं तो दूसरी ओर हाथों की मुटिठयां भींचे इस विनाश को रोकने में लगीं हैं। देखना यह है विनाशकारी जीतता है या विनाश को रोकने वाला। आने वाले समय में जो जीतेगा मानव का अस्तित्व उससे ही तय होगा।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां न नाम–मात्रेण करोत्यरोगम्।।

शास्त्रों का अध्ययन करने वाला व्यक्ति भी मूर्ख हो सकता है। परन्तु जो विद्या पढ़कर उसे आचारण में परिवर्तित करता है यानि क्रियाशील रहता है वास्तव में वही विद्वान् या पण्डित होता है। जिस प्रकार रोगी व्यक्ति औषधि के नाम का उच्चारण करने से स्वस्थ नही हो सकता, अपितु औषधि का नियमानुसार सेवन करने पर ही वह ठीक हो सकता है।

A person who studies scriptures can also be a fool. But the one who attains knowledge and converts it into conduct, that is, remains active, is a learned scholar in real sense. Just as a sick person cannot become healthy by merely uttering the name of the medicine and can be cured only by taking the medicine according to the rules.

एलोपैथी बनाम स्वामी रामदेव

— ✍ सन्त समीर

इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन बौखलाया हुआ है। इसके महासचिव डॉ. जयेश एम. लेले का तेवर देखकर लगता है जैसे कि वे स्वामी रामदेव को सामने पा जाएँ तो कच्चा चबा जाएँगे। स्वामी रामदेव के खलिाफ राजनीतिक गलियारों से लेकर अदालत तक अभियान चलाया जा रहा है। मैं आजकल टीवी वगैरह देख नहीं पा रहा, तो पहले मुझे बस दूर–दूर से उड़ती–पड़ती जानकारी मिली थी। परसों शाम को जाकर कहीं वह वीडियो सुन पाया, जिस पर विवाद है। शुरू में मैंने भी सोचा था कि हो सकता है जोश–जोश में स्वामी रामदेव कुछ ज्यादा बोल गए हों, पर इस वीडियो में वे पूरी तरह सही दिखाई दिए। मुझे नहीं लगता कि उनको सफाई देने या माफी माँगने की जरूरत थी।

पहले ही स्पष्ट कर दूँ कि मैं हमेशा से हर पैथी की अच्छी चीजों का समर्थन करता रहा हूँ। एलोपैथी की आपात् स्थिति को सँभालने की खूबी अद्भुत है और यह मानवता के लिए इसकी महान् देन है, पर यह भी एकदम सच है कि कोरोना के मामले में इसकी एक–एक कर ज्यादातर दवाएँ फेल साबित हुई हैं। अगर स्वामी रामदेव ने यह बात सीधे कह दी तो इसमें गलत क्या है? मैं साल भर से कोरोना मरीजों के इलाज के काम में लगा हुआ हूँ और साफ देख रहा हूँ कि लोग बीमारी से कम बीमारी के गलत इलाज से ज्यादा मर रहे हैं। यह इससे भी साबित होता है कि होम्योपैथी और नेचुरोपैथी में गम्भीर मरीज भी आसानी से बच रहे हैं। यह रहस्य भी समझिए कि नेचुरोपैथी और होम्योपैथी वालों के लिए मास्क जैसी चीजों का कोई मतलब नहीं है। कारण साफ है कि ये दोनों पैथियाँ किसी वायरस या बैक्टीरिया को खतरा नहीं मानतीं। वायरस या बैक्टीरिया लाखों–करोड़ों की सङ्ख्या में हमारे शरीर में अन्दर–बाहर होते ही रहते हैं, वे खतरा तभी बनते हैं, जब हम अपनी इम्युनिटी कमजोर करके अपने भीतर उनको पनपने का माहौल देते हैं। वायरस और बैक्टीरिया के बारे में यह जरूर समझना चाहिए कि एक स्वस्थ शरीर के लिए इनकी मौजूदगी जरूरी है, क्योंकि माहौल में वायरस और बैक्टीरिया न हों तो हमारे शरीर में रोगों से लड़ने की इम्युनिटी विकसित ही नहीं हो सकती। यह भी समझिए कि सङ्क्रमण हर तरफ फैला हुआ है, पर होम्योपैथी और नेचुरोपैथी के डॉक्टर कोरोना की वजह से नहीं मर रहे। मरने वालों में एलोपैथी के डॉक्टरों की सङ्ख्या बहुत बड़ी है। बिस्वरूप रॉय चौधरी के सैकड़ों एनआईसी एक्सपर्ट इलाज के दौरान कोई मास्क नहीं लगाते और न ही मेरे जैसे लोग होम्योपैथी से इलाज करते हुए मास्क की जरूरत महसूस करते हैं।

एलोपैथी वाले कह रहे हैं कि स्वामी रामदेव का कहना गलत है कि एलोपैथी दवाएँ फेल हुई हैं। एलोपैथ तर्क दे रहे हैं कि ये दवाएँ काम नहीं कर रही थीं, इसलिए इन पर रोक लगी। एक डॉक्टर के मुँह से जब यह बात मैंने सुनी तो मन में यही आया कि इन महोदय के गाल को थप्पड़ से सहलाना चाहिए। ऐसे लोगों से पूछना चाहिए कि दवा काम नहीं कर रही, तो क्या यह उसका फेल होना नहीं हुआ? दवा काम न करे और मरीज मर जाय, तब भी क्या दवा पर पास का तमगा लगा देना चाहिए? वास्तव में एलोपैथी दवाएँ सिर्फ फेल ही नहीं हुई हैं, बल्कि ये स्पष्ट तौर पर मरीजों को नुकसान पहुँचा रही थीं और इनकी वजह से एक–दो नहीं, लाखों लोगों की जान चली गई है। सही कहा जाय तो एलोपैथी के डिग्रीधारी डॉक्टर कोरोना के इलाज में नीम–हकीमों के भी बाप निकले हैं। वाहियात ढङ्ग से स्टेरॉयड, एण्टीबायोटिक से लेकर कैंसर तक की दवाएँ खिला–खिलाकर लोगों की इम्युनिटी इतनी खराब कर दी कि ब्लैक फङ्गस भी महामारी की शक्ल लेता दिखाई देने लगा। ईमानदारी से इस पर शोध हो तो कुछ दिनों बाद यह पूरी तरह सच साबित होगा। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि मैंने तमाम मरीजों की अनाप–शनाप एलोपैथी दवाएँ बन्द करवाईं और इसके बाद होम्योपैथी देकर उनको खतरे से बाहर किया। यह बात अब स्पष्ट हो चुकी है कि एण्टीबायोटिक और एस्टेरॉयड के अन्धाधुन्ध

इस्तेमाल के कारण तमाम लोगों की इम्युनिटी समाप्तप्राय हुई और वे ब्लैक फङ्गस जैसी दुर्लभ बीमारी के शिकार हुए। कल के ही अखबार में वैज्ञानिक शोध की एक खबर है––'एण्टीबायोटिक के बेतहाशा इस्तेमाल से पैदा हुआ सुपरबग।' इस बग से पीड़ित साठ प्रतिशत लोगों की मौत हो गई। मतलब यह कि एक साधारण बीमारी, जिसका इलाज होम्योपैथी और नेचुरोपैथी में स्पष्ट रूप से मौजूद था, उसके लिए आपने उस एलोपैथी में इलाज करने की अनिवार्यता बनाई, जिसमें इस बीमारी की कोई दवा ही नहीं थी। नतीजतन, गलत इलाज का ऐसा सिलसिला शुरू हुआ कि लाखों लोग मौत के मुँह में चले गए। भ्रम फैलाया गया कि लोगों की मौत बीमारी से हो रही है, जबकि लोग गलत इलाज की वजह से मर रहे थे। मजेदार यह भी कि यह कहकर सारा दोष जनता के सिरे डाल दिया जा रहा है कि लोग मनमाने ढङ्ग से एण्टीबायोटिक और एस्टेरॉयड खाकर परेशानी में पड़ रहे हैं, जबकि सच यह है कि आम लोग अगर अपनी मनमानी कुछ दवाएँ खाते भी हैं तो वे केवल 'पैरासीटामाल' और 'डोला' जैसी इक्का–दुक्का दवाएँ हैं। एण्टीबायोटिक और एस्टेरॉयड का प्रिस्क्रिप्शन डिग्रीधारी डॉक्टर लिख रहे हैं। डॉ. के. के. अग्रवाल जैसे बड़े डॉक्टर सबसे सस्ते एस्टेरॉयड को रामबाण की तरह प्रस्तुत कर रहे थे, पर अन्तिम सच यही है कि यह उनकी भी जान नहीं बचा सकी। मैंने ऐसे–ऐसे प्रिस्क्रिप्शन के पर्चे देखे हैं और उन्हें सख्ती से रुकवाया है, जिन पर डॉक्टरों ने ढेर सारी कैंसर और एड्स की दवाएँ लिख रखी थीं। सच्चाई यही है कि एलोपैथी दवाएँ कायदे से फेल हुई हैं, पर इसे सीधे स्वीकार नहीं किया जा रहा। बावजूद इसके सच तो सच ही है, इसे स्वीकार करने में क्या परेशानी? हाँ, अगर एलोपैथी के खलिाफ झण्डा–बैनर कोई इसलिए उठाता है कि उसे भी अपनी दवाएँ बेचनी हैं या अपना कोई स्वार्थ साधना है, तो इसे मैं जरूर गलत मानता हूँ।

जो भी हो, इसीलिए कहता हूँ कि स्वामी रामदेव जैसे लोग कुछ आवाज उठाएँ तो कितना भी अनसुना किया जाए, हड़कम्प मचे बिना नहीं रहेगा। मेरे जैसे लोगों का दायरा सीमित है, पर स्वामी रामदेव को करोड़ों क्या अरबों लोग जानते हैं। मैं लगातार लिख–बोल रहा हूँ कि पैथियों की सीमाएँ खत्म करने की जरूरत है और यह भी कि जिस एलोपैथी को वैज्ञानिक पद्धति के रूप में प्रचारित किया जा रहा है, उसका वास्तव में काफी हिस्सा घोर अवैज्ञानिक है। मैं बहुत पहले से कहता आ रहा हूँ कि एलोपैथी ने 'क्योर' शब्द को जैसे पेटेण्ट करा रखा है, जबकि इसमें साधारण बीमारी के लिए भी 'क्योर' कहना गलत है। यह बात मैं बार–बार कह चुका हूँ कि देश भर के एलोपैथी के दस–बारह लाख डॉक्टर मिलकर भी दावा नहीं कर सकते कि उन्होंने एक भी मरीज के अस्थमा, हृदय रोग, थायरॉयड, आर्थराइटिस, पीनस, कई तरह के आटो इम्यून रोग, बीपी या अवसाद वगैरह को पूरी तरह ठीक कर दिया है। जिन्दगी भर दवा खानी हो तो इसे ठीक होना नहीं कहते। अब यही बात स्वामी रामदेव जी ने 25 सवाल के रूप में आईएमए से पूछा है, तो हड़कम्प मचा हुआ है। स्वामी रामदेव ने अगर यह कहा कि जब दो हजार एलोपैथी के डॉक्टर ही अपने इलाज से खुद को नहीं बचा पाए तो वे जनता को क्या बचाएँगे, तो इसमें गलत क्या है? इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन वाले लोग कह रहे हैं कि स्वामी रामदेव ने यह कहकर डॉक्टरों के परिवारों का अपमान किया है। इनसे पूछना चाहिए कि क्या सिर्फ इसलिए सही सवाल नहीं पूछना चाहिए कि इससे किसी का अपमान हो जाएगा। वास्तव में मृत डॉक्टरों के परिजनों को भी सामने आना चाहिए और कहना चाहिए कि आखरि आपके इलाज का तरीका कैसा है, जो एकदम सही समय पर अस्पताल की मदद लेने वाले डॉक्टरों तक की जान नहीं बच पा रही।

स्वामी रामदेव स्वामी कितने और लाला कितने, यह फैसला पाठकों पर छोड़ता हूँ, पर स्वामी रामदेव के सवालों से सहमत होते हुए दो कदम आगे की बात कह रहा हूँ कि एलोपैथी का अब तक का जो तौर–तरीका है, उसको बदले बिना उसमें छोटी बीमारी के लिए भी निरापद दवा बनाना अभी हाल सम्भव नहीं है। हर दवा का साइड–इफेक्ट है और होता रहेगा, यहाँ तक कि विटामिन की सुरक्षित मानी जाने वाली गोलियों का भी। अगर कोई सार्वजनिक चर्चा आयोजित करे, तो प्रमाणों के साथ यह बात मैं सिद्ध कर सकता हूँ। खैर, अच्छी बात है कि रामदेव जी ने एलोपैथी को नकारा नहीं है। एलोपैथी का योगदान महान् है।

इमरजेंसी के लिए अद्भुत काम है इसका, पर एलोपैथी के ज्यादातर लोग अन्य पैथियों को जिस तरह से खारिज करते हैं, हिकारत की नजर से देखते हैं, इससे ही साबित होता है कि विज्ञान की समझ इनकी 'अधजल गगरी' वाली है, या कई अर्थों में मूर्खतापूर्ण है। बदतमीजी देखिए कि पिछले साल जब कोरोना के मरीजों को भोपाल के एक होम्योपैथी कॉलेज ने चार–छह दिन में ठीक करके घर भेजना शुरू किया, तो वहाँ के एलोपैथों ने बाकायदा विरोध प्रदर्शन किया और सवाल उठाया कि होम्योपैथी वालों को इलाज की छूट किसने दी! मतलब साफ है कि इन्हें लोगों की जान बचाने की चिन्ता नहीं थी, बल्कि अपने धन्धे पर खतरा दिख रहा था। मरीज इनके लिए दुकान पर आया कस्टमर है। आखिर ऐसे लोगों को हत्यारों की श्रेणी में क्यों न रखा जाय? मैं पहले भी कह रहा था, आज भी कह रहा हूँ कि कोरोना में जितने भी लोग मौत के शिकार हुए हैं, उनमें से निन्यानवे प्रतिशत गलत इलाज की वजह से मरे या मारे गए हैं। यह एक तरह से हत्या है, भले ही गैरइरादतन कहें। मीडिया की भूमिका भी हत्यारों का साथ देने की रही है। उसने उन लोगों को फेक कहने का पुरुषार्थ किया, जो लोग सचमुच जनता की जान बचा रहे थे। यह बात जरूर है कि इसी दौरान देश में ऐसे भी एलोपैथ सामने आए, जिन्होंने मानवता के लिए महान् काम किया। देश भर में तमाम डॉक्टर हैं, पर इसी दिल्ली में मशहूर हड्डी रोग विशेषज्ञ डॉ. सुभाष शल्य जैसे लोग भी हैं, जो मेरे जैसे साधारण व्यक्ति की पोस्टें साझा करने में कोई परेशानी नहीं महसूस करते। महाराष्ट्र में यवतमाल के प्रसिद्ध एलोपैथ डॉ. अनिल पटेल जैसे लोग भी हैं, जो मुफ्त में चिकित्सा शिविर लगाते हैं और मरीजों को कभी भी ट्रॉयल के तौर पर थोक के भाव दवाएँ नहीं देते।

विज्ञान का दूसरा सिरा देखने के लिए मैं बार–बार कहता हूँ कि एलोपैथों को एक बार सामने से होम्योपैथी का प्रभाव देखना चाहिए और फिर इसके मूल सिद्धान्तों की समझ बनानी चाहिए। मुझे अन्दाजा है कि होम्योपैथी पर बात करने वाले देश में बहुत कम हैं। कारण कि आजकल के छात्र कई बार एमबीबीएस में दाखिला नहीं पाते तो बीएचएमएस में चले जाते हैं। जाहिर है, ऐसे में कम ही होम्योपैथ होम्योपैथी की गहराई में जा पाते हैं और ज्यादातर एलोपैथी अन्दाज में कई–कई दवाओं की पुड़ियाएँ बाँधकर मरीज को पकड़ाते हैं। कोई दवा काम कर गई तो तीर, नहीं तो तुक्का। मैं देश के डॉक्टरों से अपील करूँगा कि अगर आप होम्योपैथी का असर देखना चाहते हों और इसमें छिपी भविष्य की निरापद चिकित्सा व्यवस्था की महान् सम्भावना को पहचानना चाहते हों तो मैं कहीं भी आने को तैयार हूँ। इस बात का कोई अर्थ नहीं है कि मैं डिग्रीधारी हूँ या झोलाछाप। वैसे ज्ञान कभी भी झोलाछाप नहीं होता। डिग्री लेकर भी ज्ञान से रिश्ता न बन पाए तो झोलाछाप से ज्यादा खतरनाक बात है। मेरी जानकारी बहुत हल्की है, पर अनुभवों के चलते कुछ रहस्य मुझे मालूम हैं, जिन्हें साझा करने में मुझे कोई हर्ज नहीं है। इस मामले में मेरा विश्वास है कि एलोपैथ होम्योपैथी का रहस्य समझ लें तो एलोपैथी की तमाम दवाओं के साइड–इफेक्ट समाप्त करने का उन्हें तरीका मिल जाएगा और तब एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेद, सिद्ध, यूनानी और नेचुरोपैथी को जरूरत के हिसाब से सही समय और सही स्थान पर उपयोग करके मरीजों को सम्पूर्ण स्वास्थ्य देना आसान हो जाएगा। यहाँ यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि भले ही आज के युग में होम्योपैथी का आविष्कार महान् हनीमैन ने जर्मनी में किया, पर मैं होम्योपैथी को आयुर्वेद का ही एक अङ्ग मानता हूँ। कई लोगों को यह आश्चर्य लग सकता है, पर मुझे कुछ प्राचीन श्लोक और घटनाओं के वर्णन मिले हैं, जिनमें होम्योपैथी का सिद्धान्त हूबहू वर्णित है। फेसबुक पर चीजों का दुरुपयोग ज़्यादा होता है, इसलिए कभी मौका मिला तो इसका प्रदर्शन सार्वजनिक रूप से करना पसन्द करूँगा।

स्वामी रामदेव मेरे पुराने परिचित हैं। किसी वजह से दो–चार साल मुझसे कुछ नाराज रहे। पहले कभी–कभार उनके यहाँ से फोन वगैरह आ जाते थे, पर करीब महीने भर पहले मैंने उन्हें सन्देश भिजवाया तो कोई जवाब अभी तक नहीं आया है। शायद कोराना–काल के बाद आए। बहरहाल, उनसे मुझे आज भी उम्मीद है, इसलिए यही कहूँगा कि आज आपकी छवि थोड़ी लाला रामदेव वाली जरूर बन गई है, पर आसाराम, नित्यानन्द, राम रहीम टाइप वाले आरोप नहीं हैं। आप चाहें तो एक बार फिर देश आपके साथ खड़ा हो सकता है। बस जरूरत सन्न्यासी वाली असली निष्पक्षता को धारण करने की है। नेताओं की घिनौनी राजनीति और सन्न्यासियों की धर्म के नाम पर जालसाजी से देश की जनता तङ्ग आ चुकी है। देश को अब असली नेता और असली सन्न्यासी की जरूरत है।

पुंसवन संस्कार की महत्ता समझें

– ✍ डॉ. विक्रम कुमार विवेकी

संस्कारों पर आधारित लेखमाला पिछले अंक से प्रारम्भ की गई थी। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक कुल सोलह संस्कार महर्षि दयानंद और अन्य ऋषियों ने निर्धारित किए हैं। कुछ अध्येता 24 तो कुछ 48 संस्कार भी मानते हैं, लेकिन सोलह संस्कारों से मानव जीवन में वे सभी संस्कार पूर्ण हो जाते हैं जो आवश्यक होते हैं। संस्कार मानव निर्माण के मंत्र, आधार, विज्ञान और पूर्णतः दिलाने वाले होते हैं। ऋषि–मुनियों ने मानव को आदर्श, संतुलित और तेजस्वी मानव निर्माण में संस्कारों को विधिवत् करने का उपदेश वेद शास्त्रों में किया है। आधुनिक युग में राम–कृष्ण, गौतम, दयानंद और भगत सिंह जैसे क्रान्ति महापुरुषों के जीवन की कहानियां और उनके शौर्य की गाथाएं हिन्दुओं में सुनने–सुनाने की परम्परा धीरे–धीरे समाप्त हो रही है। पुरुष आधुनिक होकर निस्तेज होता जा रहा है तो स्त्री भी उसका अंधानुकरण कर अपने गौरव और विशेषताओं को भूलती जा रही है। ऐसे में संस्कारों की महत्ता और भी बढ़ जाती है। इस अंक में पुंसवन संस्कार की उपयोगिता और आज के समाज पर यह लघु लेख प्रकाशित किया जा रहा है। डॉ. विक्रम कुमार विवेकी लिखित यह लेख पाठकों के लिए उपयोगी होगा, ऐसी आशा है –

–सम्पादक

पुंसवन संस्कार का महत्त्व

पुंसवन संस्कार के दो उद्देश्य हैं। प्रथम है–विवाह के उपरान्त पति–पत्नी के द्वारा सन्तानोत्पत्ति के लिए शयनकक्ष में सहवास करते हुए गर्भाधान का जो प्रयास किया जाता है, उसे केवल इन्द्रियजन्य सुख का साधन, विषय–लोलुपता, लम्पटता, वीर्य–क्षरण या शुक्रक्षरण के माध्यम से मनोरंजन या मनोविनोद का ही विषय न बना लिया जाये। अपितु गर्भस्थिति के ज्ञान के पश्चात् संयम–पथ के पथिक दोनों बनें। दूसरा उद्देश्य है– गर्भस्थिति की जानकारी होते ही पुरुष–सन्तान की प्राप्ति हेतु आयुर्वेदिक विधि के अनुसार प्रयास करना।

नियन्त्रणहीन कामुकता को लगाम देना, ब्रह्मचर्य का पालन, सात्विक व पौष्टिक का खान–पान, पिता–माता व गर्भस्थ शिशु की वृद्धि हेतु औषधियों का सेवन व वीर्य–लाभ के लिए अन्य अनेक विधि–विधानों व सलाहों का उल्लेख चरक, सुश्रुत, अष्टांग–हृदय व वैदिक ऋचाओं में उपलब्ध होते हैं। इस संस्कार का भी मूल सन्देश ***अथर्ववेदीय*** निम्न मन्त्र में हैं –

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवन कृतम।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि।।
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत्।।

(6/11/1,2)

चिन्तन

इस संस्कार को करने से गर्भिणी को पति का सानिध्य मिलते रहने के कारण शान्ति मिलती है। आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति में पति का पत्नी से जो दूरभाव बना रहता है, गर्भाधान करने के पश्चात् पति की जो अन्यमनस्कता पत्नी से बनी रहती है उसे समेटने तथा शिशु अन्य दुर्भावों को नष्ट करने का सन्देश यह संस्कार देता है। गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए उन्मुक्त व निरंकुश कामनाओं पर कठोर अंकुश लगाना भी इस पावन संस्कार का पवित्र ध्येय है।

जहां तक पुरुष–सन्तान–प्राप्ति का लक्ष्य है उसके बारे में महर्षि चरक विस्तार से लिखते हैं। उन का कथन है कि पुरुष–गर्भ या स्त्री–गर्भ का विवर्तन वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान से किया जा सकता है। यदि गर्भ में स्त्री या पुरुष–लक्षण के व्यक्त होने से पूर्व ही पुंसवन विधि को ठीक प्रकार से किया जाये तो यह संस्कार निश्चित रूप से यथेष्ट फलदाता बनता है। गर्भाधान, वाराह तथा शांखायान गृह्यसूत्रकारों के अनुसार यही समय उपयुक्त है। इस संस्कार में गर्भिणी पत्नी की दाहिने नथुने में सोम, सुलक्ष्मणा, वटशुंग, सहदेवा और विश्वदेवा आदि औषधियों का रस दूध में पीसकर दो–तीन बूंद की मात्रा डालने से 'पुत्रगर्भ' का लक्ष्य प्राप्त होता है। यदि गर्भिणी वमन न करे तो यही 'नस्य' की विधि निरन्तर करने से ये औषधियां गर्भस्थापक व पुत्रदायी होती हैं।

आधुनिक गर्भ–विज्ञान के सिद्धान्त में भी स्त्री–बीज में जो लिंग वाहक एक्स क्रोमोजौम्स तथा पुरुष में वाई क्रोमांजौम्स की पारम्परिक संयोग से स्त्री–सन्तान प्राप्ति की चर्चा की जाती है, वहाँ उस प्रसंग में ये आयुर्वेदीय औषधियां उन क्रोमोजौम्स को सबल या निर्बल ही करती हैं। जहाँ कहीं भी धर्मशास्त्र या आयुर्वेद में शुक्राधिक्य से पुत्र या आर्तव की अधिकता से कन्या की उत्पत्ति निर्दिष्ट है, वहाँ इनका अभिप्राय शुक्र या आर्तव, मात्रा के रूप में अधिक हों ऐसा नहीं है। अपितु पुरुष सन्तान या स्त्री–सन्तान को जन्म दे सकते हैं, यह अभिप्राय है। और पुंसवन संस्कार की विधियों के माध्यम से शुक्र व आर्तव को औषधियों के माध्यम से शुक्र व आर्तव को औषधियों, भावनाओं व आशीर्वचनों के द्वारा प्रभावित करना ही इस द्वितीय संस्कार का द्वितीय लक्ष्य है।

यज्ञ –– जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त जो शिल्प व्यवहार और जो पदार्थ विज्ञान है; जो कि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है; उसको "यज्ञ" कहते हैं।

कर्म –– जो मन, इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टा विशेष करता है सो "कर्म" कहाता है। वह शुभ, अशुभ और मिश्रभेद से तीन प्रकार का है ।

क्रियमाण –– जो वर्तमान में किया जाता है "क्रियामाण कर्म" कहाता है।

सञ्चित –– जो क्रियमाण का संस्कार ज्ञान में जमा होता है; उस को "सञ्चित कर्म" कहते हैं।

प्रारब्ध –– जो पूर्व किये हुये कर्मों के सुख–दुःख रूप फल भोग किया जाता है उसको "प्रारब्ध" कहते हैं।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

दुख के फिर साये गहराए

आँखों में आँसू भर आए,
दुख के फिर साये गहराए।

बन्द हो गए बाग – बगीचे, बैठे सब आँखों को मींचे।
विद्यालय भी कोई न जाता, छूट गया कॉलेज से नाता।
नुक्कड़ पर यमराज खड़ा है,
मौत का यह फरमान बड़ा है।
कौन दिलासा देगा कुछ भी ज्ञात नहीं,
गम की कटती काली– काली रात नहीं।

रोजगार पर आया खतरा, रोटी पर भी आज है पहरा।
नाम देख कर सांसें अटकी, घर के बाहर पर्ची लटकी।
जान जीविका किसे बचाएँ,
खाएं तो कैसे कुछ खाएं।
लापरवाही अब जीवन पर भारी है,
चारों खाने दिखती बस लाचारी है।

आज न कोई हाथ मिलाता, आज न कोई गले लगाता।
कोई न घर पर मिलने आता,
टूटा गया आपस का नाता।
रिश्तों की बुनियाद हिली है, कांटो वाली राह मिली है।
काँधा देना भी अब तो दुश्वार हुआ,
हाय कबीरा बेबस तेरा प्यार हुआ।

मंदिर मस्जिद बंद हो गए, होली के वो रंग खो गए।
कौन है दोषी किसे पता है,
किसके हिस्से किसकी खता है।
वैध– हकीम दवा ना कोई, चुपके चुपके मुनिया रोई।
आज खबर मनहूस पुनः इक आई है,
काली–काली दुख की बदली छाई है।

बाबूजी का साथ है छूटा, आशाओं का दीपक फूटा।
बिटिया की होनी थी सगाई, छोटू कैसे करे पढाई।
दादी जी कोने में गुमसुम,
मम्मी का उजड़ा है कुंकुम।
राम करो उद्धार ये दुनिया पस्त हुई,
कोरोना के प्रेत से धरती त्रस्त हुई।

आँखों मे आँसू भर आए,
दुख के फिर साये गहराए।

–✍ राजेश जैन 'राही'
रायपुर

वीर सावरकर : एक नहीं, दो आजन्म कैद की सजा

– ✍ डॉ. युधिष्ठिर त्रिवेदी

क्रान्ति देश, समाज, संस्कृति, धर्म और शिक्षा का वह संस्कार है जिससे परिवर्तन होता है। जैसे सोने का शोधन कर उसे कुन्दन बनाकर आभूषण का निर्माण किया जाता है, कुछ इसी तरह का कार्य क्रान्ति के माध्यम से किया जाता है। जैसे सोने का शोधन स्वर्णकार के माध्यम से होता है इसी प्रकार समाज, धर्म, देश, संस्कृति आदि का शोधन क्रान्ति के माध्यम से किया जाता है। भारतीय परम्परा में शोधन, संस्कार, क्रान्ति और संघर्ष की बहुत पुरानी परम्परा है। परतन्त्रता व्यक्ति, समाज, देश, संस्कृति व धर्म किसी के लिए कारावास की तरह है। जैसे कारावास से मुक्त होकर व्यक्ति सहजता, स्वतन्त्रता और प्राकृतिक रूप से आनन्द का अनुभव करता है, इसी प्रकार से परतन्त्र राष्ट्र, समाज, संस्कृति व धर्म भी सहजता, स्वतन्त्रता का अनुभव करते हैं। मानव की आदर्श स्थिति उसकी स्वतन्त्रता में ही सुरक्षित रह सकती है। इस विचार का सबसे पहले वेद में उद्घाटन हुआ है। वेद के स्वाध्यायी जानते हैं राष्ट्र, समाज, संस्कृति और धर्म के लिए स्वतन्त्रता का क्या मूल्य है। और भारतीय स्वतन्त्रता समर के वे महतो महान् वीर योद्धाओं ने भी वेद के पथ और प्रेरणा का अनुशरण कर स्वतन्त्रता की महत्ता को सिद्ध कर दिखाया था। ऐसे ही महनीय भारतीय स्वतन्त्रता समर के अजेय और अतुलनीय स्वतन्त्रता सेनानी थे महान् वीर विनायक दामोदर सारवरकर जिन्हें दो जन्म के आजीवन कारावास की सजा मिली थी। संयोग की कहा जाएगा कि आप का जन्मदिवसं मई के महीने में आता है जिस महीने मे कवीन्द्र रवीन्द्र का होता है। भारतीय मनीषा और चिकित्सा क्षेत्र (बाल रोग विशेषज्ञ) के अध्येता और संवाहक डॉ. युधिष्ठिर त्रिवेदी जी द्वारा लिखित यह लेख महान् वीर सारवरकर के जीवन की स्मृतियों को समर्पित है। आशा है पाठकगण अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराएंगे।

– सम्पादक

महान् वीर सारवरकर : एक संक्षिप्त परिचय

चंदन है इस देश की माटी और यहाँ हर दिन त्यौहार है। मई का महीना, जहाँ 1857 की क्रान्ति के प्रारम्भ, पूना के तीन सगे भाइयों चाफेकर बन्धुओं के बलिदान से जुड़ा हुआ है, वहीं इसी माह में कवीन्द्र रवीन्द्र का जन्म दिन 7 मई तथा विनायक दामोदर सावरकर का जन्म दिन 28 मई को आता है। विनायक सावरकर ही शायद एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी अंग्रेजों ने दो आजान्म कारावास (अण्डमान निकोबार जेल की) सज़ा सुनाई थी। विनायक कारावास जो अपने अप्रतिम शौर्य प्रदर्शन के कारण बाद में वीर सावरकर नाम से प्रसिद्ध हुए की अनेक बातें प्रथम और अद्वितीय थीं।

1875 की आजादी की सशस्त्र क्रान्ति को अंग्रेज सैनिक बिद्रोह और गदर के नाम से बदनाम करते थे। वीर सावरकर पहले ऐसे इतिहासकार हुए जिन्होंने लंदन के पुस्कालयों और अन्य ग्रन्थों से शोध करके अपने 1857 का स्वतंत्र्य समर नामक ग्रन्थ की रचना कर यह सिद्ध कर दिया कि यह व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए किया गया सैनिकों का विद्रोह नहीं था बल्कि मातृभूमि की परतंत्रता से मुक्त बनाने हेतु सैनिकों, किसानों, मजदूरों, राजा, महाराजाओं, व्यापारियों और आमजन का स्वतंत्रता संग्राम था। अंग्रेजों के ऐसी किताब के लिखे जाने की सूचना अपने गुप्तचरों से मिल गई थी। अतः सावरकर के पुस्तकालयों में प्रवेश पर पुस्तक पूरी होने के पहले ही प्रतिबन्ध लगा दिया गया। आपने अपने मित्रों को भेजकर जानकारी लेना चालू रखा। किताब की पाण्डुलिपि भेजी गई।

एक प्रेस इसे गुपचुप छापने को तैयार हुआ। उस पर अंग्रेज पुलिस ने छापा मारा। किताब की पाण्डुलिपि बचा ली गई। जिसे फिर से अंग्रेज गुप्तचरों की नज़रों से बचाकर विदेश भेजकर फ्रांस में छापा गया। बाद में दुनिया के अनेक देशों में इसे छापा गया। सुभाषचन्द्र बोस और भगतसिंह ने इसे छपवाकर युवकों में बांटा।

सावरकर पूना के फर्ग्यूसन कॉलेज में पढ़ते हुए बी.ए. करने के पहले ही मित्र मेला नामक अपनी संस्था के माध्यम से युवकों में राष्ट्र भक्ति और बलिदान का भाव भरने के अनेक कार्यक्रम चला रहे थे। विद्यार्थी सावरकर के विद्रोही तेजस्वी भाषण को सुनकर लोगों ने अपने पहने हुए विदेशी पकड़ों के कोट, पेन्ट, और

कमीज़ उतारकर फेंक दिये और पूना में पहली बार विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई, जिसमें लोकमान्य तिलक ने सावरकर को आशीर्वाद दिया। बी.ए. के बाद बेरिस्टर की पढ़ाई के बहाने सावरकर लंदन गए। वहाँ प्रख्यात क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्णजी वर्मा के यहाँ इंडिया सोसाइटी की स्थापना कर उसके द्वारा शस्त्र और गोला बारूद इक्ट्ठा कर भारत के क्रान्तिकारियों के पास भेजने लगे। आप वहाँ दुनियाभर के अखबारों में लेख लिखकर भारत में अंग्रेजों के अत्याचारों की जानकारी देते थे। वहीं सावरकर के एक शिष्य मदनलाल ढींगरा ने सावरकर से प्रेरणा और सहयोग से लंदन के जहांगीर हाल में कर्नल वईली की गोली मारकर हत्या कर दी। इस कारण अंग्रेज सरकार सावरकर को कभी भी गिरफ्तार कर सकती थी, इस विचार से मित्रों ने आपको फ्रांस भेज दिया। आप वहीं से भारत की आजादी का प्रचार करने लगे, पर फ्रांस में ऐसे शान्त बैठना आपको पसंद नहीं आया। आप वापस इंग्लैण्ड लौटे, लौटते ही लंदन रेलवे स्टेशन पर आपको गिरफ्तार कर लिया गया। वहाँ आप पर राजद्रोह का मुकदमा दायर कर जहाज द्वारा भारत भेजा गया, पर भारतमाता का यह सपूत शौचालय के दरवाजे के कांच पर अपना कोट टांगकर शौचालय के नीचे का पटिया हटाकर समुद्र में कूद गया। अंग्रेज सिपाहियों को काफी देर बाद जब पता चला, तब गोलियों के बीच यह तैरते हुए मार्सल बन्दरगाह पहुंच गए। वहाँ से मुम्बई लाकर उनको अण्डमान जेल भेज दिया गया। अण्डमान जेल देशभक्तों को निर्दयतापूर्वक कष्ट देने के लिए कुख्यात था। सावरकर जब वहाँ पहुंचे तब उनके गले में दो आजन्म कारावास की पट्टी पढ़कर जेलर ने क्रूर मुसकान के साथ अपमानित करने वाले लहजे में पूछा–क्या तुम इतने वर्ष जीवित रह पाओगे ? इस पर सावरकर ने धैर्य और वीरतापूर्वक कहा– क्या तुम इतने वर्षों तक भारत को गुलाम रख पाओगे ?

सवरकर की वीरता ने जेलर को लज्जित किया। वहाँ अमानवीय यातनाएं सावरकर को दी गई। दोनों हाथों में बेड़ियां पहनाकर खड़े रहने के अलावा कोल्हू में बैल की जगह जोतकर तेल निकलवाया गया। कोड़े मारना तो सामान्य बात थी, पर मातृभूमि के सच्चे सपूत ने देश के लिए सब यातनाएं हँसते–हँसतें झेलीं। 28 मई जन्म दिवस पर उनकी स्मृति को नमन्।

विचार ऊर्जा का वाहक होता है। जब भी हम सकारात्मक सोचते हैं, प्रेरणाएं स्वयं हमारी तलाश करने लगती है। कठिन चुनौतियों पर विजय प्राप्त करने वाले ऐतिहासिक पात्र हमारे मन– मस्तिष्क में जीवंत हो हमारा मनोबल बढ़ाने लगते हैं। जामवंत बन हमें स्मरण कराते हैं – 'प्रातः समय रवि भक्ष लियो तब तीनो भयो उजियारों।' और तब हम भी बजरंग बली की तरह चुटकी में समुद्र लांघ जाते हैं। लेकिन ज्यों ही हम निरूत्साहित होते हैं, इतिहास के पराजित पात्र अपनी– अपनी कब्रों से निकल कर हमें शतुरमुर्ग की तरह रेत में गर्दन घुसेड़ने की बहुमूल्य (बेमूल्य) राय देने आ जाते हैं।

वास्तव में मैं, आप, हम सब की पहचान केवल हमारा नाम अथवा पहनावा या नैन–नक्श, शरीर की बनावट आदि आदि नहीं बल्कि हमारे विचार और हमारा व्यवहार है। बहुत संभव है आज भी आपको अपने बचपन के कुछ पात्रों का स्मरण गुदगुदाता हो। यह भी मुमकिन हे कि आपको उनका नाम भी याद न हो लेकिन उनका उत्साह, उनकी प्रेरणा भुलाये नहीं भूलती।

माना दुःख सताता हैं पर यही तो है जो सुख का महत्व भी बताता हैं इसलिए हर अवसर में मुश्किलें देखना छोड़ सम्भावनाएं तलाशिये। निराशा को अपने आसपास मत फटकने दीजिए। ऐसा तभी संभव है जब हमारे आसपास जय जैसे मित्र हो। जिसके पास एक तरफ हैड और दूसरी तरफ टेल वाला सामान्य सिक्का नहीं, दोनो तरफ हैड वाला सिक्का हो। मेरा सौभाग्य है कि मेरे आसपास एक नहीं, आप जैसे अनेक 'जय' हैं जो मेरे मनोबल को डगमगाने नहीं देते।

पुनश्चः प्रथम अप्रैल दुनिया के कुछ देशों में मूर्ख दिवस के रूप में भी प्रचलित है लेकिन हमारे लिए तो प्रत्येक दिन, प्रत्येक क्षण मूर्खता से निजात पाने का अवसर है। क्योंकि हमारे पूर्वज ऋषियों ने हमें कल्याण मंत्र दिया है –

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय ।।

(हे ईश्वर हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।।)

बृहदारण्यकोपनिषद् (1.3.28)

कृतज्ञता की दिव्यता

– ✍शकुंतला देवी

सकल ब्रह्माण्ड में मानव ऐसा प्राणी है जो बुद्धि और विचार के साथ कोई भी कार्य करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है। सद्बुद्धि वाला व्यक्ति उपकार करता है और दुर्बुद्धि अपकार कराती है। उपकार के बदले जब हम उस व्यक्ति के प्रति नतमस्तक होते हैं, तब वह हमारी कृतज्ञता होती है। यदि उपकार के बदले हृदय में कृतज्ञता की भावना न जागे, वह इंसानियत के उसूलों के खिलाफ मानी जाती है। सरल भाषा में अहसान के बदले अहसानमंद होने की जगह अहसान फ़रामोश होना इंसानियत के खिलाफ है। किसी के किए उपकार या हितकारी कार्य के बदले जब हम उसके प्रति आभार प्रकट करते हैं, तब वह कृतज्ञता कही जाती है। यह कृ–तज्ञयता इंसान को अंदर और बाहर से बड़ा बनाती है। उपकार से कीर्ति मिलती है और कृतज्ञयता से भी कीर्ति मिलती है। दोनों दशाओं में कीर्ति मिलती है।

संस्कृत के 'कृ' धातु से कीर्ति शब्द बना है। 'कृ' का मायने होता है 'कृत्य' का परिणाम। कीर्ति और ख्याति दोनों एक होते हुए भी, अलग भाव रखते हैं। ख्याति प्रसिद्धि के अर्थ में मूलतः मिलती है, लेकिन कीर्ति कर्म या कार्य का परिणाम है। प्रसिद्धि उत्तम कार्य या सुकर्म का परिणाम है, लेकिन कीर्ति कर्म या कार्य का परिणाम है। कृतज्ञता उपकार के बदले 'धन्यवाद' या आभार जताने के अर्थ में व्यक्त की जाती है। जो उपकार करता है, उसे भी कीर्ति मिली और जो उपकार के बदले 'धन्यवाद' किया, उसे भी कीर्ति मिली। दोनों सकारात्मक या शुभ लक्षण को प्रकट करते हैं। दोनों (उपकार व कृतज्ञता) यदि जीवन के हिस्से बन जाएं और हमारी आदत में शुमार हो जाएं तो, अंतर्मन में पवित्रता, सहिष्णुता और विनम्रता का विस्तार होता है। जितना हमारे अंतर्मन में सद्गुणों का समावेश होता जाता है, उतना हमारा आत्मिक विकास और विस्तार होता जाता है। हमारी संस्कृति में आभार प्रदर्शन की परम्परा बहुत पुरानी है। सृष्टि उत्पत्ति से लेकर अब तक मानव ने हर दिशा में प्रगति की है। ज्ञान–विज्ञान में तो वह बहुत आगे बढ़ गया है। यदि कोई क्षेत्र अभी उन्नति की धारा में तीव्रता नहीं हासिल कर पाया है तो, वह क्षेत्र है अंतर्मन का विज्ञानमय होना। जीवन विज्ञान का विकास अभी शैशव अवस्था में है। उपकार और कृतज्ञता दोनों जीवन विज्ञान के आधार हैं। यदि मानव जीवन में कृतज्ञता और उपकार की भावना न हो तो उसकी सर्व–श्रेष्ठता का कोई मायने नहीं है। यही अध्यात्म है। यही जीवन दर्शन है। आत्मिक विकास का प्रवाह उपकार और कृतज्ञता की नदी से प्रवाहित होता है। सत्यम–शिवम्–सुन्दरम् का गान इन दोनों सद्गुणों से ओत–प्रोत होता है। शुभत्व और शिवत्व दोनों में समावेशित हैं। मन की दिव्यता इससे ही झलकती है। इसलिए इन दोनों सद्गुणों को हमेशा अंतर्मन में पिरोए रखना चाहिए।

आध्यात्मिक होना और आध्यात्मिक कहलाना दो चीजें हैं। आध्यात्मिक होते ही व्यक्ति इस सकल जगत् के प्रति कृतज्ञता से भर जाता है। वह अंदर और बाहर से एक जैसा होता है। उसके रोम–रोम में कृतज्ञता रूपी अमृत रस टपकता दिखाई पड़ता है। उसका प्रत्येक स्पंदन कृतज्ञता के भावों से भूषित होता है। वह प्रत्येक प्राणी में उसी परमात्मदेव का दर्शन करता है जैसा अपने अंदर। दैवीय शक्ति से लबालब भरा हुआ ऐसा व्यक्ति, सच्चे मायने में साधक होता है। पवित्रता, करुणा, दया, प्रेम, सत्य और अहिंसा उसके जीवन के आधार बन जाते हैं।

मानव में बुद्धि–तत्त्व, चेतना–तत्त्व और आत्म–तत्त्व की सर्वोच्चता के कारण उसकी उन्नति के सबसे अधिक अवसर और आयाम हैं। यह सब परम चेतना जिसे परमात्मा कहते हैं ने प्रदान की है। इस लिए मानव का कर्तव्य है कि वह हर पल उस जगदीश्वर के प्रति कृतज्ञता के भाव से भरा रहे। कृतज्ञता को वेद में आंतरिक विकास का लक्षण बताया गया है। मानव का जितना ही अंतरतर का विस्तार होता जाता है उतना ही वह दैवीय गुणों से सम्पंन होता जाता है। सद्गुणों से सम्पंनता यह बताती है कि जीवन का उत्तरोतर विकास हो रहा है। भगवान कृश्ण गीता में कहते हैं, मानव अपने सद्गुणों से देवत्व पद पाने का अधिकारी बनता है। कहने का भाव यह है कि कृतज्ञता देवत्व का ही रास्ता है। इस रास्ते का पथिक कभी मरता नहीं। देव और

देवत्व दोनों अमर हैं। अमरता शरीर की नहीं, कीर्ति की अमरता है। कीर्ति की अमरता ही सच्ची अमरता है। आज भी राम, कृश्ण, बुद्ध, महावीर, परषुराम और बाल्मीकि, अपने महान् दैवीय गुणों के कारण अमर हैं।

मनोविज्ञान जानने वाले जानते हैं कि हमारी अभिव्यक्ति मानसिक, वाचिक और कार्मिक तीनों तरह की जैसी होगी, हमारा अंतरतर वैसा बनता जाता है। और अंतरतर जैसा होता जाता है, वैसा हमारा जीवन भी बनता जाता है। इस लिए सकारात्मकता के साथ जिंदगी बसर करने का उपदेश शास्त्रों में दिया गया है। सकारात्मकता का प्रथम चरण है ही कृतज्ञता। यह जीवन का भूषण और आभूषण है। यह गरीब–अमीर, छोटा–बड़ा, ब्राह्मण–शूद्र और अन्य सभी भेदों को खत्म कर देती है। मानव में बुद्धि और विवेक होने के कारण उसमें कृतज्ञता का भाव प्राणी मात्र ही नहीं, समुद्र, पहाड़, पेड़–पौधे, खेत–बाग सभी के प्रति कृतज्ञयता का भाव होता है। क्योंकि ब्रह्माण्ड के कण–कण से मानव को कुछ न कुछ मिलता रहता है और उसका उपयोग भी करता है। इसलिए कृतज्ञता सभी के प्रति होनी चाहिए और हमारे स्वभाव का हिस्सा बनै रहना चाहिए।

जीना क्या अंधियार में, मरना क्यों गुमनाम ?
लिखें- लिखें मन- आग से, धरा- गगन पर नाम
धरा-गगन पर नाम, नाम सौ सागर तेरे
तुझ से ही खुशरंग, तुझी से सुर्ख सवेरे
कह "भूषण "कविराय, गरल भी हँस-हँस पीना
लाख समय विपरीत, न तुझ को मर-मर जीना!

सागर में नदिया मिली, मिला प्रेम का तीर
प्रीत सुहागिन हो गई, मिला नीर में नीर
मिला नीर में नीर, कहां फिर कोई अन्तर
दो तन, दो मन एक, एक फिर धरती अम्बर
कह "भूषण" कविराय, प्रेम के ढाई आखर
जिसने साधे पार, पार वह सातों सागर ।

– ✍भारत भूषण आर्य

वसुधैव कुटुम्बकम

जाति धर्म से बढ़कर मानवता,
जो सच में जीना बतलाए,
पूरी कायनात को जोड़े,
वसुधैव कुटुम्बकम को जगाए।
धन, दौलत, पद और प्रतिष्ठा,
सब यहीं धरा रह जाता है,
मृदुवाणी व प्रीत जग में,
वसुधैव कुटुम्बकम सिखाता है।।

वृक्ष कभी न भेद करे,
सबको खाने को फल देता है,
कुआं खुद का जल न पीए,
सबकी प्यास बुझाता है।
हिन्दू, मुस्लिम, सिख,
ईसाई फूल सब का घर महकाते,
हवा सभी को ठंडक दे,
बादल सर्वत्र ही जल बरसाते।।

दीपक घर रोशन करता,
वसुधैव कुटुम्बकम को बताता,
भू सब के लिए अन्न उगाता,
सूरज जग को रोशन करता।
नीले आसमान के नीचे ही,
हम सब अपना घर बनाते है,
तिनके तिनके के लिए लड़ाई,
हमें इसे समझ न पाते हैं।।

ईश्वर सभी को सुख दु:ख और
जीवन में देता है प्रकाश,
चंद दिनों के लिए आते जग में,
अपनों पे न करें विश्वास।।
संपत्ति और निज स्वार्थ में,
आपस में ही झट लड़ जाते हैं।
भाई भाई का बना शत्रु,
वसुधैव कुटुम्बकम न लाते हैं।

– ✍लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

कोरोना के खतरे को रोकने में क्या शाकाहार है सबसे कारगर दवा

– ✍ ए.के.आर्य

कोरोना की पहली लहर में यह चर्चा हुई थी कि मांसाहारी लोगों को शाकाहारी लोगों की अपेक्षा संक्रमित होने का खतरा बहुत अधिक है। दूसरी लहर में यह वैज्ञानिक प्रमाण में भी सामने आ गया है। मैरीलैण्ड के जॉन स्कूल हॉप्किंस ब्लूमबर्ग स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ ने अपने हालिया रिसर्च में यह पाया है कि कोरोना होने पर शाकाहारियों में हालात बिगड़ने का खतरा 73 फीसदी तक कम रहता है। 2,884 फ्रंटलाइन वर्कर्स पर हुई रिसर्च का दावा भारत में आयुर्वेद के दावे से मेल खाता है। आयुर्वेद के अनुसार कोविड में शाकाहारी मांसाहारियों से कहीं बेहतर स्थिति में हैं। जो रिसर्च मैरीलैण्ड में जुलाई–सितम्बर 2020 में किया गया था उसमें अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, स्पेन जैसे बहुत अधिक कोरोना से प्रभावित फ्रंटलाइन वर्कर्स को शामिल किया गया। रिसर्च में पता चला कि शाकाहार से बेहतर रोगप्रतिरोधक क्षमता व्यक्ति में विकसित होती है, इस लिए कोरोना या दूसरी किसी घातक बीमारी से व्यक्ति उतना प्रभावित नहीं होता जितना कि मांसाहारी व्यक्ति होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइजेशन की 2013 की रिपोर्ट के मुताबिक दुनियाभर में 90 प्रतिशत से अधिक मांस फैक्ट्री फार्म से आता है। इन फार्मों में जानवरों को ठूस–ठूसकर भरा जाता है और साफ–सफाई पर गौर नहीं किया जाता है। इस वजह से वायरल बीमारियां होने का खतरा काफी बढ़ जाता है। हाल में गुजरात में फैली वायरल बीमारी कांगो बुखार की वजह संक्रंमित जानवर थे, जिनके मांस खाने से बीमारी आम लोगों में फेली।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रपट

विश्व स्वास्थ्य संगठन की वर्ष 1981 की मेडिकल रपट में मांसाहार से 134 बीमारियाँ पैदा होने की बात कही गई हैं। हेल्थ एजूकेशन काउंसिल के अनुसार विषाक्त भोजन से होने वाली 90 प्रतिशत मौतों का कारण मांसाहार ही होता है। 2016 में नेशनल एकेडमी ऑफ साइंस की स्टडी के अनुसार अगर दुनिया की सारी आबादी मांस छोड़कर सिर्फ शाकाहार का सेवन करने लगे तो 2050 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 70 प्रतिशत तक कमी लाई जा सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसार ब्लड शुगर को कंट्रोल करने के लिए दिनभर में यदि 50 प्रतिशत फल और सब्जियों का सेवन करें तो मधुमेह पर काबू पाया जा सकता है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के शोध के अनुसार यदि आहार में रेड मीट को हटा दें तो कोलोन कैंसर होने का खतरा काफी कम हो जाता है। इसी तरह फल–सब्जियों के अधिक सेवन से कैंसर होने का खतरा बहुत कम होता है। जर्मनी के प्रो. एग्नरबर्ग ने अपने शोध से यह साबित किया कि अंडा 51.83 प्रतिशत कफ पैदा करता है। इससे जो लोग यह तर्क करते हैं कि यह कफ नाशक है का खंडन होता है। इसी प्रकार वयस्क व्यक्ति के लिए प्रोटीन की जितनी आवश्यकता होती है उसे दूध, अन्न या फल के माध्यम से पूर्ण किया जा सकता है। आहार विज्ञान के अनुसार बैठकर काम करने वाले एक व्यक्ति को प्रतिदिन 2.400, मध्यम दर्जे के व्यक्ति को 2.800 और भारी श्रम करने वाले व्यक्ति को 3.900 कैलोरी की आवश्यकता होती है। क्या कोई चिकित्सक यह प्रमाणित कर सकता है कि प्रतिदिन 28 या 38–44 अंडे खाकर इतनी कैलोरी ऊर्जा प्राप्त कर सकता है? क्या इन अंडों में वे सभी चीजें होती हैं जो 'सम्पूर्ण आहार' में होनी चाहिए? वैज्ञानिक शोध के अनुसार एक अंडे में केवल 87.5 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

वैज्ञानिक शोध के प्रमाण

वैज्ञानिक प्रमाणों से यह साबित हो चुका है कि शाकाहारी सात्विक भोजन से न्यूरो इन हीबीटरी ट्रांसमीटर पैदा होते हैं जिनसे मस्तिष्क शांत रहता है। वहीं पर तामसिक यानी मांसाहारी भोजन से मस्तिष्क में उत्तेजक तंत्रिका संचारक (न्यूरो इक्साइटेटरी ट्रांसमीटर्स) उत्पन्न होते हैं जिससे मस्तिष्क अशांत रहता है। जाहिर है गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, खरगोश और अन्य शाकाहारी जन्तुओं में सिरोटोगिन की अधिकता के कारण ही उनमें शांत प्रवृतियाँ पाई जाती हैं। इसी तरह शेर, भेड़िया और चीते जैसे अनेक मांसाहारी जन्तुओं में सिरोटोनिन के अभाव में

उनमें क्रूरता, आक्रामकता, अशान्ति और अधिक चंचलता पाई जाती है। यदि इसे आयुर्वेद की भाषा में कहें तो मांसाहार से तामसिक प्रवृति बढ़ जाती है, इससे कोई भी प्राणी हिंसक, क्रोधी और क्रूर हो सकता है। जाहिर है कि प्रकृति प्रदत्त स्वभाव और प्रवृति को कोई भी जीव नहीं बदल सकता, लेकिन मानव को यह वरदान मिला हुआ है कि वह अपनी बुद्धि से अपने स्वभाव को आहार–विहार और ऋतुचर्या का पालन कर उत्तम बन सकता है। इस लिए शेरदिल का उदाहरण बहादुरी में तो दे देते हैं लेकिन जब हिंसक, क्रूरता और आक्रामकता की बात आती है तो शेर को सबसे अधिक हिंसक जीव माना जाता है। कहने का मायने यह है कि मांस खाकर शेर बहादुर नहीं बनता, बल्कि शेर की प्रवृति ही खूंखार है, जिसे हम भूलवश बहादुरी कहते हैं। हम शेर या बाघ के स्वभाव का सूक्ष्मता से निरीक्षण नहीं करते हैं। हम इस बात को क्यों भूल जाते हैं कि शेर और बाघ सहित सभी मांसाहारी जंगली पशु हमेशा अपने कमजोर शाकाहारी प्राणियों का ही शिकार करते हैं। इस लिए हम यह नहीं कह सकते हैं कि हमें शेरदिल बनना है, बल्कि हमें संवेदना से परिपूर्ण परोपकारी हृदय वाला मानव बनना चाहिए। मानव को सही मायने में मानव बनने का प्रयास करना चाहिए। यानी हमें दयालु, विनम्र, अहिंसक, सदाचारी और परोपकारी बनना चाहिए। शेर की तरह दूसरों को मारकर अपना पेट पालना तो पशुता का कार्य है, मानव का कार्य और स्वभाव तो जीवन लेना नहीं बल्कि जीवन देना होना चाहिए। यदि हम भी जंगली जानवरों की तरह निरीह प्राणियों को मारकर अपनी उदरपूर्ति करते हैं तो हममें और जानवरों में अन्तर क्या रह जाता है? दूसरी बात, जगंली हिंसक पशुओं को तो कुदरत ने हिंसक बनाया ही है, क्या मानव को भी कुदरत ने जन्मजात हिंसक बनाया है? यदि हिंसक बनाया है तो हमें भी भूख लगने पर बिना विचार किए कुछ भी खा लेना चाहिए। इस लिए हमें यह नहीं कुतर्क करना चाहिए कि मानव को हर तरह की खाने–पीने की आजादी है। क्या इस बात को हम नकार सकते हैं कि हमारी आजादी वहीं तक है जहाँ तक दूसरों की आजादी पर कोई आँच न आती हो।

नैतिकता और आहार की पूरकता

बुद्धिमानी और समझदारी की बात तो यह होनी चाहिए कि हम दूसरों को अपने स्वाद, शौक और स्वार्थ में किसी भी हालात में किसी भी तरह की क्षति न पहुँचाएं। यदि हमें दूसरों के द्वारा क्षति पहुँचाने पर बुरा लगता है या किसी प्रकार की बेइंतजामी से तकलीफ पहुँचती है तो, हमें भी दूसरों के सम्बंध में ऐसा ही सोचना चाहिए। वह चाहे मानव के सम्बंध में हो या अन्य किसी भी प्राणी के सम्बन्ध में।

आहार की वैज्ञानिकता और आहार पर हुए कुछ विश्वासनीय शोधों और खोजों से ऐसे तथ्य सामने आए हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि सिरोटोनिन के अभाव में स्वभाव में किस प्रकार का बदलाव आ जाता है। सन् 1993 के जर्नल ऑफ क्रिमिनल जस्टिस एजूकेशन में फ्लोरिडा स्टेट के अपराध वैज्ञानिक सी.रे. जैफरी ने अपने गहन अनुसंधान से यह पाया कि जैसे ही किसी जन्तु में सिरोटोनिन की मात्रा कम या इसके अभाव में मस्तिष्क प्रतिकूलताओं से भर जाता है और जन्तु का स्वभाव आक्रामक और अत्यंत क्रूर हो जाता है। गौरतलब है वैज्ञानिक तथ्य यह कहते हैं कि मांस में ट्रिप्टोपेन नामक अमीनों अम्ल होता ही नहीं है। इससे मस्तिष्क में क्रूरता और आक्रामकता का उफान आने लगता है। इस सम्बंध में एक अन्य शोध डॉ पॉल ग्रीन गार्ड ने किया। उन्होंने भी अपने शोध के दौरान यह पाया कि यूरोपीय देशो में अनिद्रा की सार्वभौमिक बीमरी का एक बड़ा कारण यूरोपीय देशों के लोगों का मांसाहारी होना है। इस गहन शोध पर डॉ. ग्रीन को सन् 2000 में नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के रिचर्ड रेंधम और नेन्सील कांकलिन, ब्रिटेन व मिनेसोटा विश्वविद्यालय के ग्रेग लेडन के रिसर्च से खुलासा हुआ कि पका हुआ शाकाहारी भोजन मानव मस्तिष्क की सबसे बड़ी वृद्धि का कारण है। वैज्ञानिकों ने अपने शोध से यह सिद्ध कर दिया है कि मांसाहार से दिल के दौरे, मधुमेह, कैंसर, उच्च रक्तचाप, पक्षाघात, टीबी, (क्षयरोग) गठिया, सिरोसिस, कब्ज, मोटापा, पागलपन, रोगप्रतिरोधक क्षमता में कमी और अन्य अनेक रोग हो जाते हैं। वैज्ञानिकों ने अब तक मांसाहार से सौ से अधिक बीमारियों के होने का पता लगाया है।

मांसाहार का प्रभाव

मांसाहार से मिलने वाली वसा, शरीर में अस्थिशोथ पैदा करती है जिससे गठिया रोग हो जाता है। मांस बिक्रेता मांस की निर्जलीकरण की क्रिया को धीमा करने के लिए ब्लीचिंग पाउडर का प्रयोग करते हैं ताकि मांस का वजन बरकरार रहे। इसी

तरह मछलियों को ताजा और चमकदार बनाए रखने के लिए आमोनियम सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। इन रसायनों को भी मांसाहारी मांस खाते समय खा जाते है जिससे कई तरह के कैंसर पैदा होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके अलावा मांसाहार से आंशिक लकवा, मूर्च्छा, अनिद्रा, आस्टियोपोरोसिस, रक्तचाप, मूत्राघात, हिस्टीरिया, मिरगी (अपस्मार) मूत्राम्लता, कोरानरी थ्रोम्बोसिस, एंजाइना पेक्टोरिस, अल्बूमिन्योरिया, यकृत के विकार, मनोविकार, क्रोध का बढ़ते जाना, हिंसक मनोवृति, झगड़ालू स्वभाव का होना, टाक्सीमिया (प्रसूतज्वर) कोलेस्ट्राल का बढ़ना, आर्टीरियो, अधिक कामुकता, मुँह और पसीने में दुर्गंध आना, नेफ्राटिस, ऑक्जिमा (उकवत) अर्टीकेरिया, आँख की रोशनी में कमी, हड्डियों की कमजोरी, बवासीर व एनीमिया आदि भी हो सकते हैं। आधुनिकता और तथाकथित माडर्न बनने के दिखावे में अधिकांश लोग उन पश्चिमी चीजों का सेवन करने लगे हैं जिन्हें किसी भी नजरिए से सेहतमंद और हितकारी नहीं कहा जाता सकता है।

नये दौर में कोरोना महामारी और दूसरी तमाम बीमारियों के फैलाव ने हमें आहार–विहार के मामले में अधिक सचेत रहने के लिए प्रेरित किया है। आहार के मामले में कई पुरानी मान्यताएं और धारणाएं टूट रही हैं। दुनिया के वैज्ञानिकों को नये सिरे से आहार–विहार पर सोचने और रिसर्च के लिए प्रेरित किया है। दिलचस्प बात यह है कि पश्चिमी देशों में आहार के मामले में कई तरह के बदलाव आए हैं, खासकर कोविड19 के फैलाव के बाद। अब 'कुछ भी खाना–कहीं भी खाना' का नारे की जगह 'शरीर की मजबूती के लिए खाना और घर का खाना' पर जोर दिया जाने लगा है। देखना यह है दुनिया आहार के मामले में अपनी आदतों में कितना बदलाव कर पाती है?

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

हमारे पूर्वजों की दूरदर्शिता

वर्षों पूर्व हमारे वेद पुराणों में बिमारी को रोकने के लिए स्वच्छता के उपदेश दिए गये हैं।

1. *लवणं व्यञ्जनं चौव घृतं तैलं तथैव च ।*
   लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ।।
   – धर्मसिन्धू ३ पू. आह्निक

   नमक, घी, तेल, चावल और अन्य खाद्य पदार्थ हाथ से न परोसें, चम्मच का उपयोग करें।

2. *अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः ।।*
   – मनुस्मृति ४/१४४

   बिना समुचित कारण के अपनें हाथ से अपनी इंद्रियों, अर्थात् आँख, नांक, कान आदि, को न छूएं।

3. *अपमृज्यान्न च स्नानातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः ।।*
   – मार्कण्डेय पुराण ३४/५२

   पहनें कपड़े को दोबारा न पहनें, स्नान के बाद बदन को सुखाएं

4. *हस्तपादे मुखे चौव पञ्चाद्रे भोजनं चरेत् ।।*
   – पद्म०सृष्टि.५१/८८

   नाप्रक्षालितपाणिपादो भुञ्जीत ।।
   – सुश्रुतसंहिता चिकित्सा

   अपनें हाथों, पांव, मुह को भोजन करनें के फहले धोएं।

5. *स्नानाचारविहीनस्य सर्वाः स्युः निष्फलाः क्रियाः ।।*
   –वाघलस्मृति ६६

   बिना स्नान और शुद्धि के किया गया हर कर्म निस्फल होता है।

6. *न धारयेत् परस्यैवं स्नानवस्त्रं कदाचन।*
   –पद्म० सृष्टि.५१/८६

   दूसरे व्यक्ति द्वारा उपयोग किए गये वस्त्र (तौलिया आदि) को स्नान के बाद शरीर पोछने के लिए उपयोग न करें।

7. *अन्यदेव भवद्वासः शयनीये नरोत्तम ।*
   अन्यद् रथ्यासु देवानाम अर्चायाम् अन्यदेव हि ।।
   – महाभारत अनु १०४/८६

   शयन, बाहर जाने और पूजा के समय अलग अलग वस्त्र उपयोग करें।

8. *तथा न अन्यधृतं (वस्त्रं धार्यम्)।। – महाभारत अनु १०४/८६*

   दूसरे के पहने वस्त्र को न धारण करें।

9. *न अप्रक्षालितं पूर्वधृतं वसनं बिभृयाद् ।। – वष्णुस्मृति ६४*

   एक बार पहनें कपड़े को दोबारा बिना धोये न पहनें।

10. *न आद्रं परिदधीत ।। – गोभिसगृह्यसूत्र ३/५/२४*

    गीले कपड़े न पहनें।

ये सावधानियां हमारे सनातन धर्म में आदी काल से बताई गई हैं। स्वच्छता के लिए हमें उस समय आगाह किया गया था, जब माइक्रोस्कोप नहीं था, लेकिन हमारे पूर्वजों नें इस वैदिक ज्ञान को धर्म के रूप स्थापित किया, सदाचार के रूप में अनुसरण करने को कहा।

११जून

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

रामप्रसाद बिस्मिल

भारत माता को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के लिए भरी जवानी में फॉसी के फन्दे को चूमने वाले आर्य क्रान्तिकारी

पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल

की जयन्ती पर उन्हें सादर नमन

आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

8107827572
7665765113

आर्य परिवार संस्था, कोटा